# छिपाने को छिपा जाता

हेतु भारद्वाज

धरती प्रकाशन

प्रकाशक : धरती प्रकाशन, गंगाशहर, बीकानेर-334001/मुद्रक : एस० एन० प्रिंटर्स, नवीन शाहदरा, दिल्ली-32 / प्रथम संस्करण : 1985 / मूल्य : पन्द्रह रुपये मात्र / आवरण : पचग।

Chipane Ko Chipa Jata : Hetu Bhardvaj

Price : 15.00

प्रिय वागीश को
स्नेहपूर्वक

## क्रम

# मेरे घर की अर्थव्यवस्था और दक्षिणपंथी ताकतें

गाहे-बगाहे मेरी तनख्वाह बढ़ती रहती है, फिर भी मेरे घर का बजट घाटे मे रहता है। सरकारी घोषणाए सुनता हू, 'चीजों के दाम गिर रहे है।' मेरा वेतन बढ़ रहा है, चीजो के दाम गिर रहे है, फिर भी मेरे घर की अर्थ-व्यवस्था बिगड़ रही है। अजीब समस्या है—बढ़ते वेतन के साथ घटती कीमतें ? पर घर मे घाटे का बजट ? मुझे संदेह होता है कि कही कोई षड्यन्त्र तो नही चल रहा है ? घर की अर्थव्यवस्था को बिगाडने के पीछे विदेशी एजेंसियां और दक्षिणपंथी ताकतें तो काम नही कर रही ? इस तरह तो मेरा घर प्रगति नही कर सकता।

दरअसल घर का वित्त-मन्त्रालय तो पत्नी के हाथ मे रहता है। मेरा काम तो तनख्वाह लाकर पत्नी तक पहुंचाना भर है—ठीक उस डाकिए की तरह जो पोस्ट आफिस से रकम लेकर मनीआर्डर पाने वाले को दे आता है—पूरे निर्लिप्त-भाव से। पत्नी नामक जीव तो जन्मना दक्षिणपथी होता है और मै ठहरा प्रगतिशील। इसलिए हमारे घर की 'जनता सरकार' सदा अंत.कलह के साथ चली है।

घर की अर्थव्यवस्था पर गहराई से विचार करता हू तो बात कुछ समझ मे आने लगती है—घर मे गरीबी क्यो है ? घोटाला कहा है ? इस-लिए अपनी प्रगतिशील नीतियो के आधार पर अपने घर मे 'गरीबी हटाओ' आन्दोलन की पृष्ठिभूमि तैयार करता हूं। जानता हूं, इन नीतियों को लागू करने के लिए मुझे क्रातिकारी कदम उठाने होगे और दक्षिणपंथी ताकतों

से टक्कर लेनी होगी। मैंने अपना प्रगतिशील कार्यक्रम तैयार किया और उसे अध्यादेशों का रूप दे दिया। मैं आश्वस्त हो गया कि इन अध्यादेशों के लागू होते ही घर की अर्थव्यवस्था सुधरनी शुरू हो जायेगी।

मैंने उपयुक्त समय देखकर इकत्तीस तारीख की सन्ध्या को अपने कदम आगे बढ़ाए। मैंने घर के मंत्रियों (पत्नी व बड़ी लड़की) तथा साधारण सदस्यों (चार बच्चों) को बैठक में बुलाया और पूरी गम्भीरता के साथ घर में आपात-काल की घोषणा कर दी और तुरन्त प्रभावी होने वाले अपने अध्यादेश प्रसारित कर दिए।

क—घर की संविदा सरकार को अपदस्थ करते हुए घर के संचालन के समस्त अधिकार मेरे हाथ में रहेंगे और घर का सर्वोच्च सत्ता-घराध्यक्ष मैं स्वयं होऊंगा।

ख—वेतन का राष्ट्रीयकरण—अर्थात वेतन की सारी राशि मैं अपने पास रखूंगा तथा आवश्यकता पड़ने पर मैं ही उसके लिए धनराशि दूंगा।

ग—आवश्यक सेवाओं पर सरकारी नियंत्रण—अर्थात् भोजन, कपड़ा, दूध, सब्जी आदि पर निश्चित सीमा तक खर्च। खर्च की सीमा-निर्धारण का पूरा अधिकार घराध्यक्ष को होगा।

घ—अनावश्यक सेवाओं पर पूर्ण प्रतिबंध—अर्थात सिनेमा, पिकनिक, पत्नी की सहेलियों की महफिलों पर होने वाला खर्च पूरी तरह बन्द।

जैसे ही मैंने घराध्यक्ष के रूप में सत्ता सँभाली और ये अध्यादेश जारी किए, सभा में सन्नाटा छा गया। अध्यादेशों को सुनते ही पत्नी के मूक संकेत पर बड़ी लड़की सहित चारों बच्चे सदन से उठकर चले गये। अध्यादेशों के विरुद्ध उनका यह पहला वॉक-आउट था, पर मुझे यह स्पष्ट हो गया सदन में मेरा बहुमत नहीं है। पत्नी का चेहरा तमतमा रहा था मानो वे गुस्से में कह रही थी—'ये सारे अध्यादेश घर को बरबादी की ओर ले जाएंगे। इन से घर की सुरक्षा को खतरा पैदा हो गया है। यह घोर तानाशाही कदम है जिसने जन-भावनाओं को कुचल दिया है। यह घोर अप्रजातांत्रिक है तथा इससे निरंकुशता को बढ़ावा मिलेगा।'

मैंने पूछा, 'कहो मैडम, यह व्यवस्था ठीक रहेगी न ?' वे बोलीं नहीं, मगर उनके नैनों से अनायास ही अजस्र वारि-धारा बह निकली। अपने

विरोध मे आसुओं की इस विशाल रैली को देखकर एक बार तो मैं घबरा गया। पर सोचा कि ऐसे प्रदर्शन तो न जाने कितने होंगे, मुझे इनका डट कर मुकाबला करना चाहिए। मैंने संवाद को आगे बढाया—

'क्यों भई, रोने की क्या बात हो गयी ?'

'तो क्या हँसू' अपनी रुलाई के बीच, विस्फोटक स्वर में वे गरजी, 'हे भगवान्! उठा ले। क्या यही सब दिखाने को पैदा किया था ?' उन्होंने तीखी आवाज मे कहा, 'इस तरह अपमानित करने से तो अच्छा है, हम सबको जहर दे दो।'

जल्दी ही अश्रुधारा और भावुक अथवा कटु वाग्धारा के इस धारावाहिक प्रदर्शन ने काफी भयानक रूप ले लिया। पर मैं अटल रहा, 'ऐसी क्या बात हो गयी ?' 'और कुछ बाकी हो तो वह भी कर लो। बच्चों के सामने मेरी बेइज्जती की, मैं ही सब तनख्वाह खा जाती हू। मेरी सहेलियां ही घर को बरबाद करती है। बचा-खुचा खाती हू, मोटा-झोटा पहनती हू। दिन-भर तुम्हारे बच्चों के लिए खटती हू।' पत्नी की ये बाते वजनी जरूर थी, पर घोर प्रतिक्रियावादी भी। इसलिए मैंने सीधा आक्रमण किया, 'वो तो तुम अब भी करती रहना। बस, इतना सा ही तो फर्क है कि पैसे मेरे पास रहेगे।'

'इसी से तो सारा फर्क पड गया। मैं तो घर की नौकरानी हो गयी। अब बुढापे मे···' वे रुक गयी, उन्हे लगा होगा कि तकनीकी दृष्टि से उनका आयु-सम्बन्धी यह बयान गलत हो गया है।

उनका रोना और आणविक बातों के विस्फोट जारी रहे। मैं चुपचाप क्लब की ओर चला गया।

रात को देर से लौटा। मकान घोर सन्नाटे और अंधेरे जैसे प्रतिगामी तत्वों की गिरफ्त मे था। जो घर सदा 'मार-धाड से भरपूर पारिवारिक चित्र' की तरह जीवन्त रहता हो उसमे यह शांति देखकर मुझे अचरज नही हुआ। मैंने जोर से दरवाजा खटखटाया, पर कोई उत्तर नहीं। समझ गया प्रतिक्रियावादी ताकतें मुझे काले झण्डे दिखा रही हैं।

मैंने तुरन्त बायें बाजू वाला कदम उठाया और घर के बराबर के पेड़ से चढकर घर मे उतर आया। घर के सभी सदस्य आंगन में सोने का अभि-

मय कर मेरे खिलाफ मौन जुलूस निकाल रहे थे। मैंने बत्ती जलायी, कपड़े बदले और बरामदे में बैठ गया। पत्नी चारपाई पर चुपचाप लेटी रही।

'लाओ भई, खाना लाओ!' मैंने आवाज दी। पर मेरा बार-बार भोजन मांगना पवन का भुस हो गया। असहयोग की स्थिति स्पष्ट थी। मैंने पत्नी को झिंझोड़ा तो वे तुनककर बोलीं, 'मेरी तबीयत ठीक नहीं। रसोई में से खुद ले लो।'

जानता हूं जिससे सत्ता छिनती है, उसकी तबीयत तो खराब होती ही है। इसलिए खुद ही रसोईघर में चला गया। मगर रसोई में तो खाली बर्तन थे, रोटी-सब्जी तो दूर कनस्तर में आटा तक नहीं था। सारे डिब्बे खाली। चीनी, चाय, दाल, घी सब नदारद। आज स्पष्ट हो गया कि जिस चीज का कण्ट्रोल होता है, वह बाजार से कैसे गायब हो जाती है। पत्नी से किसी तरह की वार्ता सम्भव नहीं थी। स्पष्ट था कि मेरी प्रगतिशील नीतियों को असफल करने के प्रयास किये जा रहे हैं। पर मैं अविचल रहा और दो-तीन गिलास शीतल जल पेटोन्मुख कर चुपचाप बिस्तर पर आ लेटा। जोर से डकार ली, मानो घोषणा कर दी, मैं अपने प्राणों की कीमत पर भी घर से गरीबी हटाकर रहूंगा और दक्षिणपंथी ताकतों से मुक्त करूंगा।

मेरी नींद जल्दी खुल गयी। प्रतिक्रियावादी लोग वाकई सो रहे थे। मेरी मगन्न और चौकन्नी दृष्टि ने एक आलमारी पर छापा मारकर चाय की पत्तियां और चीनी बरामद कर लीं। तभी दूध आ गया। बस फटा-फट दो कप चाय तैयार की। चाय लेकर मैं पत्नी के पास आ बैठा और उन्हें जगाया। 'लो, चाय पी लो! अब तुम्हारी तबीयत कैसी है।' मगर उनकी सीधे बाजू वाली नजर मेरे व्यंग्य को समझ गयी। और वे झल्लाकर बोलीं—

'नहीं, मुझे चाय नहीं पीनी। रात में मेरी तबीयत की अब चिन्ता हुई है?' वे फूट-फूट कर रोने लगीं। सुबह-सुबह अपने विरोध में आंसुओं के इस विशाल प्रदर्शन से मुझे बड़ी कोफ्त हुई। पर मैं किसी तरह के दबाव में आने को तैयार नहीं था। 'अच्छा, तुम आराम करो' कहकर मैं उठ आया। मैंने पीछे से सुना 'हां, मैं कौन होती हूं जिसकी कोई चिन्ता करे।' मैं

छिपकर देखता रहा। पत्नी ने कुल्ला किया, मुह धोया और मेरी बची चाय पी। ये दक्षिणपथी लोग ऐसा ही करते है :

मैं तो घर की अर्थव्यवस्था को लेकर चिंतित था। मैंने पत्नी को बुलाया और उससे पूछा, 'घर मे क्या-क्या सामान आएगा ?'

'मुझे क्या पता ?' उन्होने सीधा प्रहार किया।

'मुझे लिखवा दो। शाम को लेता आऊगा।'

'तुम नही जानते क्या ? लाओ न लाओ, मुझे क्या ? खुद लाओ, खुद बनाओ, वरना कहोगे सामान को भी खा गयी।'

'तुम बात समझती क्यो नही ?'

'नही समझनी मुझे कोई बात। मै तो अपने मायके जा रही हूं। पैसे हों तो दे दो वरना बिना टिकट जाऊगी। पकडी गयी तो कौन मेरी नाक कट जाएगी।' कहकर वे उठ गयी। वे बच्चों से जोर-जोर से अपने जाने की घोषणाएं करने लगी।

घर मे शीत-युद्ध छिड गया था। बच्चे मुझे नोटिस दे गये थे, 'यदि मम्मी घर से गयी तो हम भी उनके साथ चले जाएंगे।' घर की आंतरिक स्थिति बिगडती जा रही थी। पर मैं भी रक्त की अंतिम बूद तक लडने को तैयार था।

कोई साढे आठ बजे होगे कि अचानक पत्नी की छोटी बहिन ललिता अपने दो बच्चों के साथ घर मे दाखिल हुई। एक विदेशी मेहमान का स्वागत करने का स्वर्ण-अवसर मेरे हाथ आ गया। मुझे खुशी हुई कि घर की स्थिति में निश्चय ही सुधार आ जाएगा। मैंने हुलस कर कहा, 'अरे ललिता, पहले से क्यो नही लिखा, मैं तुम्हें लेने स्टेशन आ जाता ?' जैसे मै कह रहा हूं, 'आपके आने से इस घर की जनता बेहद प्रसन्न है।' ललिता अपनी जीजी के पास चली गयी।

पर कुछ क्षण ही बीते होगे कि ललिता मेरे पास आयी और बोली, 'अच्छा जीजाजी, मैं तो वापस जाती हू। आपने तो जीजी को बेदखल कर रखा है। मैं तो आपको समझदार मानती थी।' मुझे आश्चर्य हुआ ललिता भी प्रतिक्रियावादी निकली। मगर उसका इस तरह जाना तो मेरे घर की प्रतिष्ठा को अंतराष्ट्रीय स्तर पर कलंकित कर देगा। इसलिए घबराकर

बोला, 'नही ललिता, ऐसी कोई बात नही। तुम ऐसे कैसे जा सकती हो ?'

'मैं तुरन्त जा रही हू, जीजाजी।'

'नही भई, ठहरो कुछ दिन। मैं तुम्हें आने के लिए ही लिखने वाला था।'

'हा-हा, लिखने वाले थे !' 'मच पर पत्नी ने विस्फोट किया।

'इस घर मे मेरा ही सम्मान नही, तुझे कौन पूछेगा ?' कहकर वे ललिता को घसीटने लगी।

'नही ललिता, मैं तुम्हें नही जाने दूगा।' मैंने जोर देकर कहा।

'तो अपने अध्यादेश वापस ले लो और घर से आपात-काल हटाकर जीजी को उनके अधिकार दे दो', ललिता ने सधि-प्रस्ताव पेश कर दिया। मैं बुरी तरह फंस गया था। पर अपनी प्रतिष्ठा दाव पर लगी देख मैं बोला, 'मैं तुम्हारी जीजी को उनके सारे अधिकार वापस देता हूं।'

घर मे अचानक चहल-पहल हो गयी। रात मे चली आ रही पत्नी की भयकर बीमारी अचानक गायब हो गयी। वे ललिता से भी छोटी लगने लगी। सत्ता-प्राप्ति का रासायनिक परिवर्तन मैं ने साक्षात् देखा। मेरी प्रगतिशीलता की ऐसी-तैसी हो गयी। मैं अपने आदोलन मे विफल रहा।

# छिपाने को छिपा जाता

कल रात मेरे कॉलेज के छात्रों ने मुझे पीट दिया। यों मेरी पिटाई तो ज्यादा नही हुई, लेकिन ज्यादा हो जाती, शोहरत तब भी इतनी ही होती। मेरा पिटना आजकल मेरे नगर की आम चर्चा का विषय है। यह नही कि मैं पहली ही बार पिटा हूं अथवा दुनिया में मैं ही ऐसा आदमी हू जिसे पिटने का मौका हासिल हुआ है। लेकिन एक शिक्षक का पिटना और लोगो के पिटने से जरा भिन्न होता है। हर व्यवसाय के अपने-अपने रिस्क होते हैं—रिश्वत लेते पकड़े जाना कुछ महकमों का खास रिस्क है जबकि छात्रों से पिट जाना मेरे व्यवसाय का आम रिस्क है। नगर के लोग बडे बेचारे है, तभी मुझसे कहते हैं, अजी भारद्वाज जी आज आप पिटे हैं, कल और प्रोफेसर, परसों अफसर'''। *मगर मैं अच्छी तरह जानता हूं, शीघ्र ही कोई* पिटने वाला नहीं है।

मैं क्यो पिटा? मै जानता हू। जब मैं छात्र था तब भी अक्सर पिट जाया करता था। (उस समय पीटने का हक केवल शिक्षको को ही होता था।) एक दिन की घटना अब भी याद है—हमारे हिन्दी के शिक्षक कक्षा मे आए। उन्होने धीरे से रजिस्टर खोला, माथे पर हाथ रखकर मंद स्वर में हाजिरी ली, आलस्य के साथ रजिस्टर बंद किया, फिर अंगडाई लेकर जम्हाई ली। साफ जाहिर हो गया कि आज वे पढाने के मूड मे नही हैं। मैंने चुटकी ली, सर, आज आपका मूड ठीक नही है क्या? जानता हूं वे मन ही-मन प्रसन्न हुए पर जाहिरा तौर पर मुझ पर टूट पड़े, खडे हो जाओ, उल्लू कहीं के। मैं खड़ा हो गया। वे कुछ नरम हुए। बोले—कोई कविता सुनाओ जो तुम्हे अच्छी लगती हो।यों घंटा काटने का सिलसिला उन्होंने

जारी कर दिया था। मेरी दिक्कत यह है कि पूरी कविता मुझे कभी याद नहीं हुई। इसलिए डरते-डरते बच्चनजी की यह पंक्ति सुना दी—

जो छिपाना जानता तो जग मुझे साधू समझता।

मैंने यह पंक्ति पूर्ण विनम्रता के साथ और सहज भाव से सुनायी थी लेकिन शिक्षक महोदय को इसमें से व्यंग्य की बू आ गयी। बस, इसी बात पर उन्होंने मुझे पीटा और जी भरकर पीटने के बाद उन्होंने मुझे उपदेश दिया—सत्यं ब्रूयात प्रियं ब्रू यात न ब्रू यात सत्यम प्रियम्। मगर मैं ठहरा जिद्दी। मैंने उसी दिन सौगंद खायी थी कि मैं सदा सच बोलूंगा, चाहे वह कितना ही अप्रिय हो। और सच मानिए, जब-जब भी पिटा हूं इसीलिए पिटा हूं। जानता हूं न जिद छोड़ूंगा, न पिटना बन्द होगा। जब भी पिटता हूं ये पंक्तियां दिमाग पर छा जाती हैं—

टूट गये सभी वहम और गलतफहमियां, केवल जिद बाकी है...

कल भी अपनी जिद के कारण पिटा—बच्चनजी की कविता-पंक्ति आज भी बहुत प्रिय लगती है, लेकिन मेरा पिटना इस बात का प्रमाण है कि मैं साधु नहीं हूं। बस जो सच बोला था वह मुझे पीटने वाले छात्रों के हक में नहीं था। मानता हूं कि मेरी बेइज्जती हुई है और बकौल लोगों के छात्र अपने शिक्षक पर हाथ उठा दे, इससे बड़ा अपमान टीचर का हो ही नहीं सकता। हरिशंकर परसाई भी शिक्षक हैं, उन्हें भी दो छात्रों ने पीटा, लेकिन उनकी पिटाई शिक्षक के रूप में न होकर व्यंग्यकार के रूप में हुई। (उन्होंने भी तो अप्रिय सत्य बोला था) मेरे पास 'पी जा हर अपमान और कुछ चारा भी तो नहीं।' झूठ बोलना होता तो कह देता गिरने से चोट लगी है अथवा छात्र परस्पर लड़ रहे थे, उनका बीच-बचाव करते समय मुझे चोट आ गयी। कई लोग ऐसा कर लेते हैं और अपमानित होने से बच जाते हैं।

पर व्यापक दृष्टि वाला आदमी हूं। मैंने तुरन्त घोषणा कर दी, मुझे मेरे छात्रों ने पीटा है। वैसे भी मेरी धारणा है कि पिटना-पिटाना मानव की सहजात वृत्ति है। दुनिया में कौन ऐसा है जो पिटने से बचा हो? लोगों

की कमअक्ली ही कहूंगा कि वे केवल शारीरिक पिटाई को पिटाई मानते हैं। 'बड़े बेआबरू होकर तेरे कूचे से हम निकले' लिखने वाला शायर भला पिटा कैसे नहीं ? बड़े-बड़े लोग पिटते रहते हैं । मैं तो किस खेत की मूली हूं । अमेरिका के तो कितने ही राष्ट्रपतियों को जान से मार डाला गया है । क्या उनका अपमान नहीं हुआ ? हुआ, मगर वे अपमान की पीड़ा भोगने से बच गये और लोगों की नजरों में मैं पीड़ा भोग रहा हूं । क्यों न भोगूं ? आखिर सच बोलता हूं। सच बोलने वाले को कष्ट झेलना ही पड़ता है । सत्य के कारण राजा हरिश्चन्द्र को क्या नहीं सहन करना पड़ा ? ईसा को सलीब पर लटका दिया गया । सुकरात को जहर पीना पड़ा। बुद्ध को मारने की क्या कम चेष्टाएं हुईं ? गांधीजी को गोली मार दी गयी। इन सभी का अपराध सत्य-पालन ही था । फिर मैं पिट गया तो कौन बड़ी बात हो गयी ।

कोई भी नहीं मानता कि मेरा पिटना कोई बड़ी बात हो गयी । आम लोगों की सहानुभूति मेरे साथ है । यों वे भी 'पिटना' रोजमर्रा की चीज मानते हैं लेकिन दुःख तो इस बात का है कि मुझ-जैसा 'भला आदमी' पिट गया । इससे अधिक लोकमत कर भी क्या सकता है । पुलिस में इत्तिला देने गया और पुलिस वालों से निवेदन किया कि मुझे पीटने वालों को सजा दो । पुलिस का मत है कि कोई खास मुकदमा तो बनता नहीं । मार-पिटाई मामूली दफाओं में आती है। पुलिस दफाओं से विवश है। मैं सबक सीखता हूं । आगे कभी पिटने का मौका मिला तो पीटने वालों से साफ कह दूंगा—कम्बख्तो, ऐसी दफा के लायक पीटना कि पुलिस तुम लोगों के खिलाफ कुछ कर सके ।

इस घटना पर मेरे प्रति सबसे अधिक सहानुभूति मेरे साथी शिक्षकों की है । वे लोग मेरी पिटाई को सारे स्टाफ की पिटाई मान रहे हैं । कितने ऊंचे विचार हैं उन लोगों के। उन्होंने पूरे आक्रोश के साथ स्टाफ मीटिंग की है । मुझे पीटने वाले छात्रों के खिलाफ कठोर कदम उठाने का प्रस्ताव सर्व सम्मति से पारित किया है कि दोषी छात्रों को (सादर) टी० सी० देकर कालिज से विदा कर दिया जाए ताकि वे अन्यत्र प्रवेश ले सकें और पिटाई का कार्यक्रम जारी रख सकें। फिलहाल इन छात्रों से न मुझे कोई

खतरा है, न मेरे साथियो को। मैं अपने साथियो का हृदय से आभारी हू।

मुझे लगता है कि आदमी को समय-समय पर पिटते रहना चाहिए। इससे लोकमत अपने पक्ष मे होता है। लोगो मे उदात्त भावनाओं का उदय होता है। जिस समय मेरे अभिन्न मित्र को मेरे पिटने का समाचार मिला। वे पाच आदमियो की मडली मे पचास प्रतिशत की स्टेक पर 'पपलू' खेल रहे थे। जब उन्हे समाचार मिला वे तुरन्त पत्ते फेक कर उठ आये, यद्यपि उस हाथ उनके पास तीन पपलू थे। कृष्ण-सुदामा की मैत्री के पश्चात् सच्ची मित्रता का इससे अनूठा उदाहरण और कोई नही मिलता। मेरे मित्र की निश्चय ही वही दशा हुई होगी जो सुदामा नाम सुनते ही कृष्ण की हुई थी। मै धन्य-धन्य कर उठता हूं और तुलसी की इस चौपाई की सार्थकता मान लेता हूं—

धीरज धर्म मित्र अरु नारी।
आपत काल परखिए चारी॥

इस अवसर पर मैंने अन्तिम दो को परखा है और दोनों कसौटी पर खरे उतरे है। कल से पत्नी ने जो सेवा की है उससे लगता है कि मेरी पिटाई का मासिक कार्यक्रम होता रहे तो स्वास्थ्य वर्धक रहे।

इस पिटाई ने मुझे अवसर दिया है कि मैं खुद को ईसा, सुकरात, बुद्ध, गाधी की श्रेणी मे रखकर देखू। उदात्त भावो से भरा मेरा निर्विकार मन मनोमय कोश से भी ऊपर उठ जाता है। इसके अतिरिक्त मैं कर भी क्या सकता हू? पुलिस भी मजबूर है। मेरे साथी वोल्ड निर्णय ले ही चुके हैं। लोकमत के पास मेरे लिए अपार सहानुभूति है। इससे अधिक आदमी को क्या चाहिए? हा, नुकसान केवल इतना हुआ कि कई बार सहानुभूति दिखाने आने वालो को चाय पिलानी पडी है। पर यह भौतिक हानि है। मेरा दर्शन भौतिकवादी नही है। इस घटना ने मेरी भावनाओं का उदात्तीकरण किया है, यह नैट लाभ मुझे हुआ है।

अब तक मेरे पिटने की बात मेरे नगर तक थी लेकिन मैं इस रचना के

माध्यम से उसे सर्व साधारण के लिए सुलभ कर रहा हूं। इसलिए नहीं कि मुझे और सहानुभूति चाहिए बल्कि मेरी मजबूरी है। अपनी मजबूरी को अंचलजी के शब्दों में यों कह सकता हूं—

छिपाने को छिपा जाता विकल चीत्कार मैं सारा,
मगर अभिव्यक्ति की मानव-सुलभतृष्णा नहीं जाती।

कैसे मूड कुछ वैसा ही बनता चला गया। जैसे रासायनिक खाद के मंत्री को शिक्षा के स्तर पर चिन्ता करते देख हँसने का बन जाता है··· या उबासी लेते आदमी को देखकर उसके फटे मुंह में झुनझुना डाल देने का ! मन में आया पूछूं, आपने पहले भी कौन-सा परमार्थ साधा है ? लेकिन जाहिराना तौर पर सिर्फ ये पूछ पाया—लेकिन आपको हटाने में किसके निहित स्वार्थ···?

(टेश करके छोड़ देने में सुविधा रहती है न ! अगला खुद बात पूरी करता है।)

उन्होंने फुर्ती से जवाब दिया—बात यह नहीं है। बात यह है कि राजनीति चीज ही बहुत पेचीदा है। सच कहूं आपसे ? मेरी हार का कारण मेरे दल के ही लोग हैं।

—तो···फिर आपको टिकट कैसे मिल गया ?

—टिकट···टिकट का तो ऐसा है कि···टिकट पर इन लोगों का जोर नहीं था। फिर ऊपर मेरी पहुंच भी जरा ठीक-ठाक ही है !

मन में आया कहूं भय्याजी, आप यही गच्चा खा गये। आप ऊपर तक तो अपनी पहुंच बढ़ाते रहे और नीचे तक अपनी पहुंच बढ़ाने की आपने कभी परवाह नहीं की ! मन में आया ये भी कहूं कि जूता टोपी से ज्यादा महत्त्वपूर्ण चीज होती है। और आज के हिसाब से सोचो तो जूता, टोपी की जगह तक पहुंच जाता है पर टोपी···बेचारी टोपी··· दरअसल हमारे यहां का वोटर अभी नासमझ है। उन्होंने मेरा विचार-प्रवाह तोड़ते हुए कहा।

उनके इस कथन पर मैं कुछ नहीं कह सका। कहने को कह सकता था कि···खैर जाने दीजिए। कुछ भी कह सकता था। पांच साल पहले यही वोटर बड़ा समझदार था क्योंकि उसने इनके हक में वोट दिया था। उनके नेतृत्व से पांच साल में नासमझी तो बढ़ी ही होगी। अपनी इस उपलब्धि पर उनका अफसोस मुझे वाजिब लगा। इस बीच उन्होंने तीन-चार आह भर ली।

—चुनाव हारने पर आप कैसा अनुभव कर रहे हैं ?—मैंने पूछा।

—भारहीनता का। कुछ देर नाक में उगली घुमाने के बाद उन्होने जवाब दिया।

—भारहीनता का? मैं समझा नही! मैंने कहा, वे धीरे से हँसे। फिर वोले—मैं राजनीति की भाषा मे बोल रहा हू। राजनीति मे नेता का भार उसका पॉवर···यानी उसका पॉवर में होना। मैं चुनाव में हार गया। अब मैं पॉवर मे नही हू तो अब मैं भारहीन ही हू। है ना? देखो··· अब मुझसे कोई मिलने तक नही आता। टेलीफोन पिछले चौबीस घण्टे से चुपचाप पड़ा रो रहा है। एक आप—पता नही कैसे चले आये!

—मैं तो सदा से आपका आदमी रहा हू। मैंने उनकी चोट पर बरनॉल लगाया। उन्हे अच्छा लगा।

नौकर कॉफी ले आया था। मेरा वक्तव्य कि मैं उनका ही आदमी हू, काफी भारी पड़ा था इसलिए उन्होने नौकर से नाश्ता भी लाने को कह दिया। मैंने मना करने का अभिनय किया। वे अपने इरादे पर जमे रहे। ठीक रहा।

—तो अब आपका क्या प्रोग्राम है? मैंने पूछा।

—अभी कुछ नही। कुछ दिन आराम करूगा।

—पर आप तो आराम को हराम कहा करते थे! आज अचानक आराम की बात कैसे···?

—आराम से मेरा मतलब है कि लोग जरा महसूस तो करें कि मुझे हराकर उन्होने कितनी बड़ी भूल की है। वे कुछ जोश मे आ गये थे!

—यह कैसे होगा? मैंने पूछा।

—देखो···मैं पॉवर मे नही रहा, पर मेरी पार्टी तो पॉवर मे है ही। मेरा पहला काम होगा—किसी से कहना नही—उन सारे कामों को रुकवाना जो मैंने कुछ ही दिन पहले शुरू करवाये थे। उन्होंने दृढ़ता से कहा।

नाश्ता आ ही गया था, मैंने अकेले ही उसे ग्रहण किया। चाय-नाश्ता प्राप्त करने के बाद अक्सर मैं बहुत अधिक करुणाशील और सहृदय हो

जाता हूं। बुरी बात है। पर क्या करू ? मजबूरी है।

—वैसे कुछ रचनात्मक काम करने की भी योजना तो होगी ही आपकी ?

—देखते है···कही गवर्नरी का हिसाब बैठाऊगा।

—यदि वह नही मिली तो ?

—मैं आशावादी हू भाई। गवर्नरी नही मिली तो खादी या गोस-वर्धन की तरफ निकल जाऊगा।

—लेकिन ये रास्ते तो हारे हुए लोगों के है। इस तरह तो आप पर 'राजनीति से निष्कासित' की मोहर लग जाएगी ? मैंने उन्हें समझाया। समझाने की कोशिश की।

—हा···ये तो है···लेकिन कुछ तो करना ही होगा न ? वैसे जिसे टिकट नही मिलता या जिसे किसी पद से त्याग-पत्र देने के लिए मशहूर कर दिया जाता है या चुनाव हार जाता है···उसके लिए भी काफी स्कोप है। आजकल ऐसी स्थिति मे दल की सुदृढ़ता के लिए काम करने की घोषणा कर डालने का फैशन चल रहा है।

—यानी केवल घोषणा का ? मैंने पूछा।

—एक भारहीन आदमी से आप और क्या उम्मीद करते हैं ? उन्होंने उलट सवाली की।

मेरी समझ मे उनका दर्शन आ गया था और पेट मे नाश्ता। मैंने रूमाल से हाथ पोंछते हुए कहा—चलू अब ?

उन्होंने सिर खुजलाया और बोले—बैठो, चले जाना।

मुझे लगा वे मुझे ताश की जोड़ी की तरह इस्तेमाल करना चाहते हैं। मैं इसके लिए आसानी से तैयार नही होता। नाश्ता-वाश्ता हो चुकने के बाद तो कतई नही।

—जरूरी काम से जा रहा था। फिर आऊंगा।

—आया करो। अपन लोग तो पुराने साथी हैं। उन्होंने कहा और

पहली बार मुझे दरवाजे तक छोड़ने आये। रस्सी जल गयी थी पर बल बाकी थे। चुनाव हारने के बाद उनकी आवाज, रुतबा, नाक, पीठ, कमर, टांगें सब दयनीय हो गयी थी···पर आखे वैसी ही शातिर थी···और इसका मतलब ये था कि यहा मेरा नाश्ता तभी तक का है···जब तक ये कही फंस-फसा नही जाते।

# क्रिकेटाधिकारियों के नाम खुला पत्र

प्रिय क्रिकेटाधिकारियो !

लो ! वेस्टइंडीज के विरुद्ध यह टेस्ट-श्रृंखला हम हार गये। (बुरी तरह हार गये—कहना 'बेकार, ही है क्योंकि हार अन्ततः हार ही होती है।) निराशा की कोई बात नहीं। क्योंकि भारतीय क्रिकेट के पराजय के स्थायी नाटक में जीत एक आकस्मिक घटना है। (हार्डी के शब्दों को बदलने के लिए क्षमा करें।) और जब-जब यह आकस्मिक घटना घट जाती है, सारा देश पागल हो जाता है और भूल जाता है कि और भी गम हैं जमाने में क्रिकेट के सिवा।

ख़ैर, आप लोगों ने भारतीय क्रिकेट की टीम में मुझे नहीं चुना। कोई बात नहीं। भविष्य में भारतीय टीम टेस्ट-श्रृंखलाएं खेलेगी ही। आप लोगों से मेरा अनुरोध है कि भविष्य में किसी भी टेस्ट-श्रृंखला के लिए चुनी जाने वाली टीम में मेरे नाम की घोषणा अभी से कर दें। जब आप मैच शुरू होने से पांच मिनट पूर्व के कप्तान की घोषणा कर सकते हैं, तो महीनों पूर्व एक खिलाड़ी के नाम की घोषणा कर नया कीर्तिमान स्थापित क्यों नहीं कर सकते ! पहले से इसलिए कह रहा हूं कि ऐन वक्त पर आप लोगों पर अनेक दबाव पड़ने लगते हैं। मेरा नाम फिर दबा रह जायेगा, आप फिर गलती कर जायेंगे और सारा देश फिर आपको कोसेगा।

आपको विश्वास दिलाता हूं कि आप मेरे नाम की घोषणा कर दीजिए, मैं तुरन्त स्वीकार कर लूंगा। हमारे देश में कोई पद ऑफर होने पर उसे अस्वीकार करने की परम्परा नहीं है—अपनी अयोग्यता बताते हुए तो बिलकुल भी नहीं।

आप लोगो के चयन के खिलाफ पत्रकार, खेलप्रेमी और अनेक विशेषज्ञ हर बार शोर मचाते हैं, आप लोगो की पक्षपातपूर्ण नीति और अदूरदर्शिता की आलोचना करते है। मगर तीव्रविरोध और कटु आलोचनाओ के बावजूद आप लोग हर बार गलती करते है। जानता हू, यदि आपने चयन की घोषणा कर दी तो सारा देश आपके खिलाफ हो जाएगा। इससे आप पर तो कोई फर्क पडेगा नही, मैं सुर्खियो मे आ जाऊगा। मेरे नगर के निवासी मेरा अभिनदन करेंगे, मेरे नाम पर कोई मैच आयोजित करेंगे। मुझे आप लोग इज्जत से क्यो महरूम करते है ?

आप लोग कह सकते हैं कि मेरा नाम तो कभी क्रिकेट-जगत् मे चमका ही नही, तो साहब इससे क्या फर्क पडता है। वैस्ट-इण्डीज के खिलाफ पिछली टैस्ट शृखला मे हमारे कप्तान 10 रन प्रति पारी के हिसाब से भी रन नही बना पाए। वर्तमान टैस्ट-शृखला का घाव तो ताजा ही है। आप खुद देख लीजिए न ! अच्छे-अच्छे खिलाडी जो क्रिकेट के अलावा कुछ भी नही जानते लगातार बिना रन बनाए आउट होते रहते हैं। मैं वादा करता हू कि इन्ही अनुभवी खिलाडियो की गरिमामय परम्परा को कायम रखने के प्रयास कर देश की क्रिकेटी इज्जत में इजाफा करूगा।

तथापि मै अपना परिचय दे रहा हू—मेरी उम्र चालीस वर्ष है। आप कहेंगे, 'भाई इस उम्र मे तो पहले ही खिलाडी सन्यास ले लेता है। मानता हू पर अपने देश मे संन्यास लिया नही जाता, दिलाया जाता है। वैस्ट-इडीज के कप्तान क्लाइव लायड की उम्र कौन कम है ? पर वे बराबर कप्तानी पर जमे हैं। आपको याद होगा कि आस्ट्रेलिया के हाथो पिटती इग्लैण्ड की टीम को उबारने के लिए मुझसे उम्र मे तीन साल बडे उड्डे को बुलाया गया था। आपने भी सकट की घडी मे एक बार दुर्रानी को बुलाया था। आप लोग मुझे बाद मे बुलाते फिरेंगे, इससे तो अच्छा है कि पहले ही मेरे नाम की घोषणा कर दें।

आप कहेंगे कि हिन्दी केअ ध्यापक-लेखक का क्रिकेट से क्या ताल्लुक ? तो भाईजान ! वही जो भारत और क्रिकेट का है। अमेरिका, रूस, चीन क्रिकेट नही खेलते। क्रिकेट-जगत् मे इन देशो की कोई औकात भी नही। फिर भी इन देशो का अपमान नही होता, अजीब बात है ! लगता है, गरीब

देश के लिए क्रिकेट का खेल बहुत मुफीद रहता है, हम भूखे रह सकते हैं, पर क्रिकेट खेलना (हारना) नहीं छोड़ सकते। दरअसल हमारे देश में क्रिकेट सुनने वालों की संख्या बहुत अधिक है। जिन दिनों भारतीय दल कोई टैस्ट मैच खेलता है, देश के विश्वविद्यालय, कार्यालय, अस्पताल आदि कार्य की दृष्टि से बंद ही रहते हैं, क्योंकि लोग तो अपनी-अपनी जगह क्रिकेट सुनने में व्यस्त रहते हैं। जाहिर है, ऐसे दिनों में प्रशासन भी साफ-सुथरा रहता है।

वैसे भी आप लोगों की कृपा से कई अच्छे-अच्छे खिलाड़ी रद्दी खेल की कमेण्ट्री सुनते रहते हैं और आप लोगों की अदूरदर्शिता पर रोते रहते हैं। मैं भी काफी कमेंट्री सुन चुका, आहें भर चुका। मेरे नाम की घोषणा अविलम्ब कर दीजिए—सोचते-विचारते आप कभी भी नहीं है, फिर मेरे नाम को लेकर ही वक्त क्यों बरबाद करते हैं। रन बनाने की गारंटी तो कोई भी खिलाड़ी नहीं दे सकता। बड़े-बड़े विशेषज्ञ कहते हैं कि क्रिकेट तो चांस का खेल है, इसमें निश्चित कुछ भी नहीं। जब सब-कुछ चांस पर ही निर्भर है तो क्या पता, अपने कर-कमलों में आए बल्ले से भी कोई मूल्यवान एकाध रन निकल जाए। (हमारी टीम में बहुमत ऐसे ही खिलाड़ियों का है।) अतः मुझे ले लेने में कोई जोखिम भी नहीं है।

अक्सर कहा जाता है कि भारतीय खिलाड़ियों में आत्म-विश्वास की कमी है। मेरे पास आत्म-विश्वास का थोक स्टॉक है। एक प्रमाण दूं—मेरी अधिकांश रचनाएं पत्रिकाओं से सम्पादकों के अभिवादन व खेद सहित वाली पर्चियोंके साथ वापस आती रहती हैं, पर मैं कभी निराश नहीं होता। लगातार लिखता जाता हूं, पत्रिकाओं को भेजता रहता हूं। सम्पादक लोग अपनी खेद व अभिवादन वाली घातक गेंदबाजी से भी साहित्य से मुझे आउट नहीं कर पाए, इसलिए टीम में मेरे आ जाने से एक आत्म-विश्वास वाला खिलाड़ी आपको मिल जाएगा।

मुझे भारतीय क्रिकेट दल में शामिल किया ही जाना चाहिए। क्योंकि आप लोगों ने अभी तक किसी लेखक को यह मौका नहीं दिया। सरकार हमारा प्रतिनिधित्व चाहती है, वह हमारा सम्मान करती है, हमें पुरस्कार देती है। पर आप लोग हमारी बराबर उपेक्षा करते आ रहे हैं। यदि समय

रहते आपने उन्हे उचित प्रतिनिधित्व न दिया तो कविता कहानियों मे वे आपकी धुनाई कर देंगे। यदि आप लोगों ने मुझे टीम मे नही लिया तो आप लोगो के विरोध मे हम समानान्तर क्रिकेट प्रारम्भ कर देंगे और 'आम' आदमी के लिए क्रिकेट खेलने लगेंगे। हमारे लेखक तो कलम को बदूक बनाने पर तुले हैं, क्या आप मुझे कलम को बल्ला बनाने का अवसर भी नही देंगे ?

एक खतरे से आप लोगों को आगाह कर दू—यदि आप लोगो ने मुझे टीम मे न लिया तो जब भी मेरे नगर मे टैस्ट मैच होगा तब आपकी नगर की दीवारो पर 'भारद्वाज नही तो टैस्ट नही' के पोस्टर चिपके मिलेंगे। तब तो झक मार कर आप मुझे टीम मे लेंगे। क्यो पोस्टर छपाने में मेरा खर्चा कराते हैं।

आप लोगों के अपने हक मे निर्णय की घोषणा की प्रतीक्षा करूगा।

भवदीय

हेतु भारद्वाज

पुनश्च—यदि वाकई आप लोग मुझे टीम में ले रहे हों, तो पत्र के सम्बोधन के 'प्रिय' को 'आदरणीय' समझें और अन्त के 'भवदीय' को 'आपका आज्ञाकारी।'

# मेरा तबादला

मैं क्या हूं? बहुत-कुछ हू और कुछ भी नही हू। यह कोई दार्शनिक बयान नही है। अपने अफसरों के लिए उनका गुलाम हूं तो मैं अपने मातहतों का मालिक हू। अफसर मुझे अपना नौकर मानते हैं तो अपने मातहतों को अपना नौकर मानता हू। (यह बात दीगर है कि न मैं अपने अफसरों को कुछ समझता हू और न मेरे मातहत ही मुझे कुछ समझते हैं—इस तरह मैं पक्का समाजवादी हू) यो मैं जन-सेवक हू—राजपत्रित अधिकारी हू अत. नगर के टट पूजिया नेता मुझे अक्सर 'देख लेंगे' की मुद्रा से घूरते रहतेहैं। मैं भी उन्हे 'देख लेना' की मुद्रा मे घूरता हू। क्योंकि मैं किसी को गाठता नही, अत. सभी मुझसे नाराज रहते हैं—मेरी पत्नी तक। बड़ी खराब आदत है।

अफसर हू, इसलिए आम आदमी से ज्यादा अधिकार मुझे मिले हैं, जबकि आम आदमी को मिले अनेक अधिकारों से मैं वंचित हूं। मैं राज्य-कर्मचारी हूं, इसलिए राजनीतिक गतिविधियों मे भाग नही ले सकता। अपनी अफसरी ठसक के कारण कई अधिकारों से मैंने खुद को महरूम कर लिया है—किसी छोटी स्टाल की बेंच पर बैठकर चाय पीने से मेरी अफसरी इज्जत की क्रीज खराब हो जाती है। जीप मे अगली सीट पर ही बैठ सकता हू क्योंकि निर्माताओं ने जीप की पीछे की सीटें अफसरी साइज से छोटी बनाई हैं। मैं विशिष्ट आदमी हू, पर बहस हमेशा आम आदमी पर करता हू, उसकी हिमायत करता हूं और आराम से जिन्दगी जीना पसन्द करता हूं।

खैर, हुआ यह कि सरकार ने मेरा तबादला कर दिया। इस स्थान

पर रहते-रहते मुझे कई साल हो गये थे। मैं यहीं रहना चाहता था क्योंकि इस स्थान की आबोहवा मेरी बीवी-बच्चों की सेहत के अनुकूल है। किंतु यह भी सही है कि मेरे रहने से यहां कई लोगों का स्वास्थ्य खराब रहता है। मैं अपने स्थानान्तरण को रुकवाने के लिए तबादला अधिकारी से मिला।

वह मेरा अफसर था।

'सर, मेरा तबादला क्यों कर दिया गया ?' मैंने गिडगिडाबद्ध निवेदन किया।

'सरकारी हित में आपका ट्रासफर हुआ है।' अधिकारी ने एक वाक्य में सारी गिड़गिडाहट फ्लैट कर दी।

'मेरे तबादले से कौन-सा सरकारी-हित सम्पन्न होता है सर ?' मैंने विनम्रता की एक और खुराक उनकी ओर बढ़ा दी। मगर उन्होंने खाऊ नजरों से मुझे देखा और खुराक को गटक गये, 'यह सरकारी शब्दावली है—इन द इण्टर-टैंम्ट ऑफ पब्लिक, अनेक काम होते हैं। मगर इनकी व्याख्या नहीं की जा सकती, और हित होने से उनका सम्बन्ध भी नहीं है। समझे !'

'पर सर, मैं तो यहीं रहना चाहता हूं। मेरी बीमार पत्नी का स्वास्थ्य यहां ठीक रहता है।'

'आपकी बीवी के स्वास्थ्य के बारे में सरकार ने आपसे कोई काण्ट्रेक्ट किया ? क्यों ?'

'मगर सर, व्यक्तिगत सुविधा का ध्यान रखना भी तो सरकार का ही काम है। फिर सर, आप तो जानते है कि मैं अपना काम कितनी मेहनत और निष्ठा से करता हूं', मैंने घोड़े की एक चाल चली।

'आपसे काम करने को किसने कहा ?' उन्होंने पैदल शह दी।

'मेरी आत्मा कहती है, सर ! मैंने' किस्त बची।

'फुलिस, आत्मा की आवाज केवल नेता लोग सुना करते हैं, वह भी चुनावों के दौरान…।'

'सर, आप विषयांतर कर रहे हैं !'

'बिल्कुल नहीं। आपका तबादला शिकायत पर हुआ है ! उन्होंने भरपूर वार किया।

'शिकायत, मेरी, कैसी ? किसने की ? सर...' मैंने एक साथ प्रश्न-चिह्नों की कतार उनके सामने लगा दी। 'मुझे बताइए, मेरी क्या शिकायत है ?' 'आपके शहर के नेता ने !' उन्होंने बर्फ की सिल्ली मेरे ऊपर रख दी, 'वे आपसे बेहद खफा है।'

'मगर आप तो खुश है। मैं तो आपको खुश है ! मैं तो आपको खुश करने के अलावा किसी को खुश करने की जरूरत नहीं समझता' मैंने रूह-आफ्जा का गिलास उनकी ओर बढ़ा दिया। उनके चेहरे पर ठडक आ गयी, 'अरे भई, इन लोगों को साथ लेकर चलना ही चाहिए।'

'मगर सर, हम लोग तो बुद्धिजीवी है ! इन अधपढ़े लोगों की क्या परवाह करे ? अब कोई मंत्री भला आपका मुकाबला कर सकता है ?' मैंने चादी का वर्क-लगा पान उन्हे पेश कर दिया। उनके चेहरे पर चादी का वर्क चिपक गया। 'करनी पड़ती है भई, इन लोगों की परवाह भी करनी पड़ती है।' उन्होंने पान एक ओर सरका दिया। 'मगर नेताजी मुझसे नाराज क्यों हैं ? मैंने तो उनकी शान के खिलाफ कोई गुस्ताखी नहीं की।'

'गुस्ताखी !' उन्होंने अपनी आखों में स्टोव जला लिये, 'आप उनके घर कितनी बार हाजिरी देने गये ? आपने कितनी बार उन्हें बुलाया ? कितनी बार उनकी अक्सर बीमार रहने वाली तबीयत का हाल पूछा ? कितनी बार उनके मोटे होते जाने की कमजोरी पर अफसोस जाहिर किया ? कितनी बार उनके व्यस्त जीवन पर तरस खाया ? बताओ मुझे ?'

मैं चुप हो गया। क्या कहता ! उन्होंने आंखों के स्टोव और तेज कर लिये, 'और समय-बेसमय आप नेतागीरी के खिलाफ नहीं बोलते ?'

'बोलता हू, सर।'

'व्यवस्था की बखिया नहीं उधेड़ते ?'

'उधेड़ता हूं, सर।'

'नेताओं की मूर्खताओं पर नहीं हँसते ?'

'हँसता हू, सर।'

'तो और क्या करते ? जरा से ट्रांसफर के लिए इत्ते सारे गुनाह कम हैं क्या ?'

'मगर सर, यह सब तो मैं दूसरी जगह भी करूंगा।'

'सरकारी हित मे आपका वहा से भी ट्रासफर हो जाएगा। काम मत करो, मगर जहा हो वहा के नेता को तो खुश रखो। यही सफलता का सूत्र है।' उन्होंने गीता के अठारह अध्याय एक वाक्य मे समझा दिए।

'यह आपका आदेश है ?' मैंने शका उठायी।

'आदेश नही, व्यावहारिक परामर्श है। अब खुद सोचो ! ये लोग भी बेचारे क्या करें। वे यही तो चाहते है कि सरकारी कर्मचारी उनसे डरें और लोग उनकी पूछ करें। सरकारी कर्मचारी का तबादला करा कर वे अपना आतक जनता पर फैलाते है कि ऊपर उनकी बहुत चलती है।' अधिकारी ने शका का समाधान किया।

'मगर सर, यह तो ज्यादती है ?' मैने फिर जिज्ञासा रखी।

'हा है, मगर वक्त की चाल को न पहचानना मूर्खता है।'

'तो मैं क्या करू ?' मैंने हथियार डाल दिये।

'अपने क्षेत्र के नेता को मना लो। उसे आश्वासन दो कि उसके चरण-दास रहोगे। तदनुरूप आचरण करो। सभी कष्ट दूर होगे'—उन्होंने उपदेशा।

'मगर सर, आदमी का स्वाभिमान…'

'होता है। जहां तबादला हुआ है, वहां चले जाओ और स्वाभिमान को चाटो' उन्होंने टका-सा जवाब दे दिया, 'तुम जैसे लोग केवल सरकारी हित साध सकते हैं।'

मुझे अब कुछ नही कहना था, सरकारी हित साधने के अलावा कोई मार्ग नही। जहा जा रहा हूं, वहा के नेता भी मुझसे क्यों खुश होंगे ! मेरी आदत ही खराब है, अपनी सेवा अवधि मे सरकारी हित करने का खूब मौका मिलेगा।

# मेरा मोहल्ला और पाकीजा

हिन्दुस्तान के आम मोहल्लों की तरह मेरा मोहल्ला भी ज्यादातर वक्त ऊंघता रहता है। रोजमर्रा की चीजों में उसकी कोई दिलचस्पी नहीं। रोजमर्रा से हटकर अगर कुछ घटित होता है तो मेरा मोहल्ला जागता है और पूरे जोर-शोर के साथ जागता है। भारत-पाक, शिमला शिखर-सम्मेलन रोजमर्रा की चीज थी, इसलिए इसकी खबरों में मेरे मोहल्ले ने कोई रुचि नहीं ली। लेकिन जिस दिन मोहल्ले को पता चला कि पाकिस्तानी प्रतिनिधि-मण्डल को फिल्म 'पाकीजा' दिखायी गयी, तो मेरा मोहल्ला अचानक जाग उठा। उसके लिए यह खबर रोजमर्रा से हटकर थी। वैसे भी 'पाकीजा' के रिलीज होने और उसके बाद मीनाकुमारी के मरने की खबर ने मेरे मोहल्ले को बुरी तरह झकझोरा है। इससे पता चलता है कि मेरे मोहल्ले में बड़े कलाप्रिय लोग रहते हैं और साथ में खोजी भी। मीनाकुमारी के मरने पर मेरा मोहल्ला जो तथ्य सामने लाया, वे मीनाकुमारी के निकट के लोगों को भी नहीं मालूम होंगे। मोहल्ले के पंडित भविष्यसेन जी का कहना है कि 'पाकीजा' रिलीज होते ही मीनाकुमारी मर जाएगी। उन्होंने यह सूचना कमाल अमरोही को भी दे दी थी, इसीलिए तो उन्होंने 'पाकीजा' बनाने में तेरह साल लगा दिए।

यों फिल्में तो रोज आती हैं और चली जाती हैं, लेकिन 'पाकीजा' ने मेरे मोहल्ले को बुरी तरह जगाया है। करीब-करीब सभी लोग 'पाकीजा' देख आए हैं। बात यहीं तक रहती तो गनीमत थी, लेकिन 'पाकीजा' पर खुलकर चर्चा करना मेरे मोहल्ले के लिए 'प्रेस्टिज प्वाइंट' बन गया है। दरअसल 'पाकीजा' की आग मोहल्ले के स्वचालित नेता ढोलचन्द ने लगायी

जो एक राजनीतिक रैली मे भाग लेने मुफ्त की बस मे जयपुर गये थे और अपने क्षेत्र के विधायक से पैसे मार कर 'पाकीजा' देख आए। आते ही उन्होंने मोहल्ले के लोगो को रैली का आखो देखा हाल सुनाने के बजाय 'पाकीजा' का हाल सुनाया और लोगो के दर्दे-दिल को जगाया।

खैर, जब अपने नगर के टाकीज मे 'पाकीजा' लगी तो मेरा मोहल्ला - शफ्रेजोखरोश के साथ जाग उठा। फिल्म लगते ही मोहल्ले के हर साम्मनित सदस्य ने यह घोषणा की कि उसी के प्रयत्नो से 'पाकीजा' इतनी जल्दी नगर मे आ पाई है। न वह मैनेजर मे बार-बार कहता, न वह 'पाकीजा' मगाता। इसके बाद 'पहले कौन देखे' की होड लगी और मोहल्ले की जागरूकता देखिए कि पहले चार दिन में ही पूरा मौहल्ला पाकीजा देख आया और उस पर बहस के लिए तयार हो गया। चर्चाओ का दौर अनेक सत्रो मे चलने लगा। कुछ लोग कमाल अमरोही पर फिदा हो गये तो कुछ उसे गाली देने लगे। कुछ को मीनाकुमारी की अदाकारी पसन्द आई तो कुछ राजकुमार के कायल हो गये। फूलचन्द जी को फिल्म ने बेहद निराश किया। उनकी निराशा का कारण यह भी था कि उस दिन उन्होंने न केवल बालकनी की टिकिट खरीदी थी बल्कि खुद को चमकाने मे भी काफी खर्च कर दिया था। उन्होंने अपना गुस्सा पाकीजा-प्रशसा-अभियान के नायक ढोलचन्द जी पर उतारा। ढोलचन्द की सौन्दर्यहीनता को धिक्कारते हुए फूलचन्द ने उन पर आरोप लगाया कि वे 'पाकीजा' देख कर आए ही नही। उन्होंने केवल पोस्टर देखकर मौहल्ले को गुमराह किया है। आखिर ढोलचन्द जी से न रहा गया—फूलचन्द! कमाल अमरोही की एक ही गलती रही कि उन्होने टिकट के साथ तुम जैसे देखने वालो के लिए अक्ल की व्यवस्था नही की।

बहरहाल 'पाकीजा' ने ऊंघते मौहल्ले को जगा दिया। छोटे-छोटे बच्चे भी गाते फिरने लगे, 'इन्ही लोगो ने, इन्ही लोगो ने····' मेरे पडोसी कर्कश-लहरी को 'पाकीजा' का सगीत बहुत पसन्द आया। एक दिन मुझसे बोले—भैया, अब मैं फिर संगीत का रियाज किया करूंगा। आखिर गुलाम मोहम्मद की जगह भरने को भी तो कोई चाहिए! क्या गजब का तबला बजाया है! मैं जानता हूं, उनका जैसा रियाज मुझे कितना महगा पडेगा।

कालेज के सांस्कृतिक समारोह के एक नाटक मे दो मिनट का पार्ट अदा करने वाली मिस दीना को खुद मे मीनाकुमारी की सम्भावनाए नजर आने लगी। पास वाले मन्दिर की कीर्तन मंडली तो आजकल 'मुझे श्याम मिल गये थे तेरा ध्यान करते-करते' (बतर्ज'''सरे राह चलते-चलते) वाले नवनिर्मित भजन को दिन में कम-से-कम पचास बार गाती है। दरअसल जिस भजन-मडली के पास लेटैस्ट फिल्मी गानों की तर्ज वाले गीत नही होते, वह अच्छा मार्केट नही बना पाती। यही हाल बैंडवालों का है जो ज्यादातर 'चलो दिलदार चलें, नदी के पार चलें' का रियाज करते रहते हैं। कवि तुकाराम ने 'ठाडे रहियो ओ वोटर यार' पैरोडी बनाकर वाइड पब्लिसिटी की गरज से एक साथ कई पत्रिकाओ को भेज दी है।

जाहिर है कि 'पाकीजा' मेरे मोहल्ले मे पूरी तरह रच-पच गयी है। दो-एक ऐसे दीवाने भी हैं जो यह सोचते हैं कि अगर उनकी लाटरी खुल गयी तो वे इस फिल्म को दुबारा बनायेंगे और कमाल अमरोही को मात देंगे।

बातें बहुत है। 'पाकीजा' के आगोश मे पूरा मोहल्ला जाग रहा है। उस दिन अपनी सफेद झक दाढी को पान की पीक से रगे फिब्बन मिया मिल गये, बोले—कहो पिरोफेसर साब, आपने 'पाकीजा' की चश्मनोशी की? मेरा माथा ठनका। मैंने टालने की गरज से कहा—हां, देखी तो थी''' पर मिया आप कहिए?

'अमां, देखी और खूब देखी। कमाल अमरोही को खुदा लम्बा वक्त बख्शे। गुलाम मोहम्मद और मीनाकुमारी दोनो फन की बुलंदी पर है। अगरेजी सल्तनत होती तो इन लोगो के हाथ-पैर कटवा दिए जाते'''।'

मैंने बीच ही मे पूछ लिया—'तो फिब्बन मिया, आपको 'पाकीजा' खूब पसन्द आई?'

'पसन्द क्या बरखुरदार कुछ पुराने जख्मो को हरा कर गयी। (एक लम्बी सास और दाढी का हिलना) अब आपको क्या बताएं पिरोफेसर साब, अपनी जिन्दगी मे भी एक साहिब जान आई थी। (फिर लम्बी सास) क्या वक्त था? सारे होशो-हवाश खो बैठा था। वो भी जालिम गजब की हसीना थी। याद आती है तो कलेजा मुह को आने लगता है।'''इतना

कहते-कहते सुपारी गले मे अटक जाने से वे बेतरह खांसने और हुच्-हुच् करने लगे। उनकी आखें निकल आई। मैं घबरा गया। मुझे लगा कि किसी तीरे नजर के शिकार फिब्बन मिया अपने जख्मे-जिगर देखते-देखते कही मौत के (अपनी साहिब जान के नही) 'पलको के आशियाने' मे अपनी गुजर न ढूंढ़ लें। मैंने उन्हें तुरत-फुरत पानी पिलाया। कम्बख्त सुपारी थी, निकल गयी और वे सम्हल गये और पाकीजा के बहाने अपनी जवानी के दिनो की दास्तान जारी रखने के मूड मे आ गये।

जल उठा। नायिका या उसका प्यारा बच्चा घर मे रह गया है। आप अपनी कुरसी पर अधीर होकर बैठे है। वह आया नायक! बिजली की फुरती से आग की लपटो मे घुस गया है। चारों ओर आग-ही-आग है पर मजाल है नायक के शरीर पर एक छाला भी पड जाय! वह तो नायिका या बच्चे को अपने कधे पर लादकर बाहर ले आयेगा और हाफते हुए फोटो खिचायेगा। आपके पास ताली पीटने के सिवा कोई चारा नही है।

अस्पताल मे नायक स्ट्रेचर पर पड़ा है—उसका सारा चेहरा पट्टियो से ढका है। आप सोचेंगे—बेचारा बुरी तरह घायल हुआ है, उसका चेहरा तो बदसूरत हो जायेगा। पर पट्टी तो खुलने दीजिए! निदेशक किसी जादूभरी सर्जरी की ऐसी कूची मारेगा कि नायक के ग्लैमर पर कोई फर्क न पड़ेगा। 'कॉलिनोस-मुस्कान' के साथ वह स्ट्रेचर से उठकर आपके सामने आ जायेगा।

हिन्दी-फिल्मों का नायक कोई ऐसा-वैसा आदमी नही है। निदेशक-रूपी गुरु गोरखनाथ ने उसे आशीर्वाद दिया है, "जा बच्चा! नायिका से मुहब्बत कर और चाहे जहा फिर! कोई तेरा बाल बाका भी नही कर सकता!" गुरु का आशीर्वाद पाकर फिल्मी नायक सुमित्रानन्दन पंत की 'बादल' कविता का नायक बनकर समुद्रो मे तैरता है, हवा मे बातें करता हुआ हवाई जहाज से कूदता है, सारे हथियार चलाता है, चलती गाड़ी मे लड़ता है, घूसेबाजी का चैंपियन है। बदूक की गोली उसे छेद नही सकती। अग्नि उसे जला नही सकती, गहरे समुद्र मे भी वह डूब नही सकता, हवाई जहाज से गिरकर भी वह मर नही सकता। कैसी विचित्र लीला है!

आप सोच सकते हैं, फिल्मी निदेशक गीतकार की अवहेलना कैसे कर देता! नायक को अन्त में नायिका और अपने परिवार के साथ फोटो खिचवाना है, आपको खुशी-खुशी विदा करना है। चाहे दिलीपकुमार हो, चाहे राजेन्द्रकुमार, दारासिंह हो चाहे रंधावा, जीतेन्द्र हो चाहे राजेश खन्ना—सभी को गुरु गोरखनाथ का आशीर्वाद प्राप्त है। इसलिए हे

दर्शको ! घबराना नहीं। नायक तो अमर है। निदेशक ने उसे माया से आवृत कर दिया है इसलिए उसका खलनायक से झगड़ा है, पर फिल्म के अन्त में निदेशक माया को समेट लेगा और आप हँसी-खुशी बिना राष्ट्रगीत गाये हाल से बाहर निकल आयेंगे।

# कवि-सम्मेलन का टेण्डर-नोटिस

विश्वविद्यालयों और कालेजो का वर्ष-भर का कार्यक्रम बडा सैट होता है। ये इस कार्यक्रम मे अमूमन परिवर्तन नही करते, यह अच्छी बात है। इनके वर्ष मे तीन 'टर्म्स' (टर्म्स कैश वाले नही) होते है। हिन्दी मे इन्हे सत्राश कहते हैं। पहले सत्राश मे प्रवेश का कार्य होता है, पूरक परीक्षाए होती हैं और छात्र सघ के चुनाव होते है। चुनाव के तुरन्त बाद छात्र सघ का पहला काम किन्ही मुद्दो को लेकर हडताल करना होता है। असल काम तो हडताल करना है, उसके मुद्दे तो हडताल के दौरान बनते-बिगडते रहते है, घटते-बढते रहते है। प्रशासक और शिक्षक छात्रो की माग पर उदारतापूर्वक विचार करते है और मागे मान ली जाती है, इसके साथ पहला सत्राश समाप्त। सब राहत की सास लेते है। साल का एक-तिहाई हिस्सा हँसी-खुशी कट जाता है।

दूसरा सत्राश प्रारम्भ होते ही छात्र सघ का उद्‌घाटन धूम-धाम से होता है। कुछ दिन उसकी तैयारी मे कटते है, कुछ थकावट उतारने में। फिर प्रशासक और शिक्षक अर्द्धवार्षिक परीक्षाओ की योजना पूरी गम्भीरता से बनाते हैं, इससे फाइनल परीक्षाओं का परिणाम अच्छा बनता है। लेकिन इसके खिलाफ छात्रसघ केवल एक दिन की हडताल करता है, फलस्वरूप छात्रों का शैक्षिक स्तर उठाने की गरज से अर्द्धवार्षिक परीक्षा की योजना रद्द कर दी जाती है। इसके बाद सम्पन्न होता है छात्रसघ का 'सास्कृतिक सप्ताह'। इस तरह दूसरा सत्राश समाप्त। शिक्षक सोचते हैं, सस्था का वातावरण बडा शात है। पढाई बडे सुचारु रूप से चल रही है।

दिसम्बर का शीतकालीन अवकाश इस वर्ष का तीसरा और आखिरी

सत्रांश। छात्रसंघ का समापन समारोह, प्रायोगिक परीक्षाओं की औपचारिकता, कक्षाओ मे छात्र अपने शिक्षको से कहते हैं, 'सर, अब तो घर मे तैयारी करने का समय है। आप हमारी हाजिरी कर दिया करें।' शिक्षक बडे उदार होते हैं। छात्रो का हित सोचना उनका परम कर्त्तव्य है। और फरवरी आते-आते तो 'प्रिप्रेशन लीव' की विधिवत् घोषणा हो जाती है ताकि छात्र या तो परीक्षाओं के बहिष्कार की योजना बना सकें या परीक्षा मे नकल करने की तैयारी कर सकें। इस तरह पूरा सत्रांश हँसी-खुशी कट जाता है। अधिकारी और शिक्षक गर्व से प्रसन्न होते है कि इस वर्ष कोई अप्रिय घटना नही घटी तथा पढाई का काम ठीक ढंग से चला।

यहा मैं केवल दूसरे सत्राश की बात कर रहा हू। इस सत्राश मे छात्र सघ अपना ऐतिहासिक 'सास्कृतिक सप्ताह' मनाता है। हर वर्ष का 'सास्कृतिक सप्ताह' पिछलों से अच्छा रहता है, इसी तरह की घोषणा होती है। इस सप्ताह की सबसे बडी विशेषता यह होती है कि इसमे सात दिन नही होते। इसमे तीन दिन से लेकर पन्द्रह दिन तक कितने भी हो सकते है। दिन कितने ही हों, पर इसका नाम सप्ताह ही रहेगा। दूसरे, यह सप्ताह सास्कृतिक होता है। इन दिनो वाकई छात्र सस्कृत दिखते हैं अर्थात् ये लोग नाटक करते हैं, नाचते-कूदते है, गाने गाते है, वाद-विवाद करते है, खेल-कूद मे भाग लेते है, कवि-सम्मेलन कराते हैं आदि-आदि। यही बाते तो शिक्षण सस्थाओ की सस्कृति है। यही क्या कम है कि इस सप्ताह वे काफी शिष्ट रहते है अन्यथा हडताल, उद्दडता आदि की सस्कृति तो पूरे वर्ष चालू रहती है।

परम्परानुसार इस वर्ष भी हमारे कालेज मे 'सास्कृतिक सप्ताह' मनाया गया। छात्रो की कृपा (?) ही कहूगा कि उन्होने मेरा नाम कवि-सम्मेलन की संयोजन समिति मे रखा। हमारे कालेज ने कवि-सम्मेलन आयोजित करने का बीडा पहली बार उठाया था। इसके प्रमुख सयोजक भौतिकशास्त्र के प्राध्यापक श्री प्रेमेन्द्र मोहन बनाये गए क्योंकि छात्रसघ के अध्यक्ष को भौतिक शास्त्र मे प्रेक्टिकल मे अच्छे अंक लेने थे। श्री प्रेमेन्द्र मोहन मुझे लेकर प्राचार्य के पास गये। मुझे उनसे कोई आशा नही थी। वे प्राणी विज्ञान के आदमी हैं किन्तु 'आदमी' नामक प्राणि में उनको कोई

रुचि नहीं है क्योंकि उन्होंने अपने पाठ्यक्रम में आदमी का अध्ययन कभी किया ही नहीं। अगर किया भी तो आदमी को जानवर मानकर।

खैर, हमने साहस कर कवि-सम्मेलन की सारी योजना उनके समक्ष रखी, लेकिन जैसे ही उन्होंने डेढ़ हजार रुपये के खर्चे की बात सुनी तो उनका सरकारी दिल दहल गया। यह कैसे होगा? एक ही आइटम पर इतना खर्च कैसे करेंगे? वे बोले।

कवि-सम्मेलन का होना मेरी नहीं, प्रेमेन्द्रमोहन की इज्जत का सवाल था। वे अड़ गये। आखिर मैंने उनके समक्ष विभिन्न कवियों के पारिश्रमिक की राशियां बताईं तो वे फिर चौंक गये, ये रेट्स तो बड़े वैरी करते है। इसमे तो भयकर आडिट ऑब्जेक्शन्स होंगे। पर मोहन जी भी जिद्दी निकले। प्राचार्य को झुकना पड़ा। वे जानते थे कि छात्रसंघ का अध्यक्ष प्रेमेन्द्र मोहन के हाथ मे है। इसलिए उन्होंने रास्ता निकाला, 'क्यों न कवि-सम्मेलन का टेण्डर नोटिस अखबारों मे निकलवा दिया जाए।'

मैं उठ आया। जान गया कि सम्मेलन नहीं होगा। मगर प्राचार्य और प्रेमेन्द्र मोहन ने मिलकर एक टेण्डर नोटिस तैयार किया जिसकी भाषागत अशुद्धि को शुद्ध कर आम जनता के लाभार्थ यहां दिया जा रहा है।

## ॥ निविदा सूचना ॥

कार्यालय, प्राचार्य, राजकीय महाविद्यालय, भावनगर। उक्त महाविद्यालय में 12-10-73 को होने वाले कवि-सम्मेलन में भाग लेने के इच्छुक कवियों से सील्ड टैण्डर आमन्त्रित किये जाते है। टैण्डर की शर्तें इस प्रकार हैं—

1. कवि-सम्मेलन में प्रत्येक कवि को केवल तीन कविताएं सुनाने का ही अवसर दिया जाएगा। यदि श्रोता किसी कवि की कविताओं पर 'वन्स मोर' की माग करेंगे तो भी तीन बार से अधिक अवसर नहीं दिये जायेंगे।

2. केवल वे ही कवि टैण्डर भेजें जो गाकर कविता-पाठ कर सकते हैं। फिल्मी धुनों पर कविता गाने वाले कवियों को प्राथमिकता दी जायेगी।

3. कवि अपना रेट स्पष्ट लिख दें जिसमे मार्ग-व्यय भी शामिल हो। कवि-सम्मेलन के समय मच पर पान, मिश्री, चाय आदि पर होने वाला व्यय कवियो को वहन करना होगा। इससे कार्यालय व्यर्थ की 'स्टॉक एण्ट्रीज' से बच जायेगा।

4. कवि केवल वीर, शृंगार, हास्य तथा भक्ति रस की कविताओं का ही पाठ कर सकेंगे। इन रसो की दो-दो कविताए बतौर सैम्पिल कवि टैण्डर के साथ भेजें ताकि कवि-सम्मेलन संयोजन समिति उनमे से सैसर कर प्रत्येक कवि के लिए तीन कविताओ का चयन पहले ही कर ले।

5. जो कवि जनता द्वारा हूट किए जायेंगे उनके पारिश्रमिक में से वाजिब कटौती करने का अधिकार प्राचार्य को होगा। यह विश्वास दिला

जाता है कि छूट करने के पूर्व-नियोजित प्रयास नहीं किये जायेंगे।

6. 'अर्नेस्ट मनी' के रूप में प्रत्येक कवि अपनी एक कविता (अप्रकाशित, अप्रसारित तथा अगामी) टैण्डर के साथ भेजे तथा उस पर 'अर्नेस्ट पोइम' लिख दे। इस कविता को महाविद्यालय-पत्रिका में प्रकाशित करने का अधिकार प्राचार्य को होगा।

7. कम रेट्स वाले कवियों में से सात कवियों को कवि-सम्मेलन में भाग लेने का निमन्त्रण मिलेगा।

8. टैण्डर प्राचार्य, राजकीय महाविद्यालय, भावनगर के नाम आना चाहिए तथा लिफाफे पर 'कवि-सम्मेलन के लिए टैण्डर' लिखा होना चाहिए।

9. टैण्डर दिनांक 30-9-73 को अपराह्न 2 बजे खोले जायेंगे। इसके पश्चात् आने वाले टैण्डरों पर कोई विचार नहीं किया जायेगा।

# शराब पीओ और भारत बचाओ

देश में कुछ लोग 'भारत बचाओ' आदोलन मे लगे हैं। इससे बडा शुभ कर्म और क्या होगा? एक समाचार यह भी था कि जनता-शासित राज्यो मे यदि नशाबंदी लागू कर दी गयी तो इका वाले या कहिए भारत बचाओ वाले उसका भी विरोध करेंगे। यह और भी जरूरी है क्योंकि यदि नशाबन्दी लागू कर दी गयी तो भारत बचाओ आदोलन कैसे हो सकेगा? मतलब साफ हो गया कि यदि शराबबन्दी लागू हो गयी तो भारत को नही बचाया जा सकता। भारत को बचाने के लिए नशा जरूरी है। आजादी से पहले लोग देश बचाने के लिए विदेशी सत्ता से लडे, उनके पास देशभक्ति का नशा था। राष्ट्रभक्ति भी नशा ही है पर अब लोगों पर उसका खुमार चढता ही नही। वह तो व्यतीत चीज है। नशा सत्ता का ही होता है और सबसे ज्यादा गहरा होता है। पर अब इन बेचारों के पास सत्ता नही है। सत्ता होती तो उसके नशे मे भारत को बचा लेते। आपात-काल लगाकर देश को बचा लिया था। उस वक्त सत्ता का नशा अपनी पूरी जवानी पर था। पर इस देश के अनपढ गरीब ने एक झटके मे उस नशे को उतार दिया, अब बेचारे क्या करे? देश को कैसे बचायें?

न रहा राष्ट्रभक्ति का नशा और न रहा सत्ता का। पर देश बचाने के लिए नशा जरूर चाहिए तो चलिए शराब का सही। भारत बचाना है तो शराबबदी का विरोध करना होगा। जिन्हे शराब पीने की लत है उन्हे निराश होने की जरूरत नही। जाओ 'भारत बचाओ' आंदोलन में भर्ती हो जाओ और शराब पीओ। यो भारत तो बच ही जायगा, डूबेंगे तो आप डूबेंगे। बड़ा बुरा वक्त आया है—सरकार पीने तक नही देती और देश मे

हर तरह की स्वतन्त्रता की बात करती है, पर पीने नही देगी तो देश बचेगा कैसे ? आपात-काल ही ठीक था जिसमे पीने की तो आजादी थी, इसीलिए देश बचा रहा ।

आज उस क्रांतिकारी शायर की याद आ रही है जिसने कभी लिखा था—

जाहिद शराब पीने दे मस्जिद मे बैठकर,
या वो जगह बता दे जहा पर खुदा न हो ।

भारत बचाओ वालो के लिए यह शेर बड़ा मुफीद रहेगा—बस मस्जिद की जगह चौराहा कर दीजिए और खुदा की जगह सिपाही कर दीजिए । शेर मे मात्राओ मे गड़बड़ी भले ही हो जाए पर उसकी सम्प्रेषण शक्ति तो सामयिक हो जाएगी । और सवाल भी उस विरोध के सम्प्रेषण का है जिसे ये लोग करना चाहते है । हमे तो भारत को बचाना है—चाहे शराबबंदी से देश को बचायें या शराब पीकर देश को बचायें, बात एक ही है ।

इतिहास गवाह है कि देश की रक्षा की जिम्मेदारी सत्ताधारियों और सेना पर होती है । जब सत्ता मगरूर हो जाती है तो जनता देश को बचाती है । पर अब भारत को बचाने की जिम्मेदारी कुछ लोग ले रहे हैं । जरूर लीजिए, आखिर देश तो आपका ही है । पर आप किस भारत को बचाना चाहते हैं ? उन दिनो की याद तरोताजा है जब देश के एक प्रमुख कर्णधार ने कहा था, 'इन्दिरा भारत है, भारत इन्दिरा है', अब उसी तबके के लोग भारत बचाओ आदोलन का सूत्रपात कर रहे हैं । उनकी चिन्ता वाजिब लगती है । उक्त कथन के सन्दर्भ मे भारत शब्द में 'श्लेष' है और जाहिर है कि इन लोगों को अपने वाले 'अर्थ' को बचाने की चिन्ता ही होगी । भारत शब्द का अर्थ-संकोच भी इन्होंने किया तो बचायेंगे भी यही । इसलिए शराब पीकर भारत बचाने की इनकी मांग वाजिब लगती है ।

मानता हू कि इन लोगों की चिन्ता भारत नामक भू भाग को ही बचाना है । उसे भी बचाने की नितात आवश्यकता है । इतना बड़ा देश और एक भी युवा सम्राट नही ? यह भी कोई सरकार हुई कि सत्ताधारी परस्पर आलोचना करते रहते है ? भला अभिव्यक्ति की इस स्वतन्त्रता से

देश चल सकता है ? कैसी अराजकता फैली है कि लोग खुलकर बात करने लगे हैं ? बचा देश वही कहा जाएगा जो दुष्यंत के इस शेर के मुताबिक आचरण करने वाला हो—

मौलवी की डाट खाकर अहले-मकतब,
फिर उसी आयत को दोहराने लगे हैं।

इस अराजकता से इस देश को बचाना ही होगा। कोई आवश्यकता नहीं इस सामूहिक नेतृत्व की। इतने सारे नेता होंगे तो देश डूबेगा ही। इतने कमीशन बैठेंगे तो देश बर्बाद ही होगा। भ्रष्टाचारियों के खिलाफ कठोर कदम उठाये जायेंगे तो देश का सत्यानाश होगा ही! इसलिए यदि इस देश को डूबने से बचाना है तो गुलाम बनाकर ही बचाया जा सकता है।

आओ भैया, आओ, शराब पीओ और भारत को बचाओ!

# गरीबी और काजू-बादाम

अखबार वाले भी गरीबों के साथ अक्सर मसखरी करते रहते हैं—पिछले दिनों राजस्थान के एक लोकप्रिय दैनिक के मुखपृष्ठ पर मोटे टाइप में छपा देखा, 'काजू-बादाम का मोह छोड़िए, मूंगफली उतनी ही पौष्टिक है।' मैं इस सुभाषित को पढ़कर सोच में पड़ गया कि यह चेतावनी किन लोगों को दी जा रही है? इसे पढ़कर तो लगता है कि भारत में काजू-बादाम खाने से लोगों का स्वास्थ्य खराब हुआ जा रहा है और इस दैनिक के सम्पादक लोगों के बिगड़े हुए हाजमे को लेकर दुबले हुए जा रहे हैं। शायद उन्हें कोई खतरा नजर आ रहा है और वे लोगों को आगाह कर रहे हैं—'भाइयो! काजू-बादाम खाना बंद करो, इससे देश का भविष्य खतरे में पड़ सकता है।' पर दिक्कत यह है कि जो लोग काजू-बादाम खाते हैं वे हिन्दी का अखबार नहीं पढ़ते, इसलिए उनका तो वैसे ही हाजमा खराब रहता है। हिन्दी का अखबार पढ़ने वाली जनता के लिए काजू-बादाम का सेवन तो केवल खयालों में ही सम्भव है। सच तो यह है कि उनके लिए तो मूंगफली भी विलास की चीज होती जा रही है। पिछली सर्दियों में मूंगफली का भाव दस रुपये किलो था। इस बार और बढ़ जाएगा पर आप महंगाई की बात करेंगे तो वे आपको चुप कर देंगे। 'मियां, महंगाई तो सारी दुनिया में बढ़ रही है, आप क्यों शोर मचाते हैं!'

पर यह सुभाषित छापते समय अखबार वालों ने सोचा होगा कि इस चेतावनी से गरीबों का भला होगा। यों भी देश के सभी साधन-सम्पन्न लोग देश से गरीबी मिटाने को बेताब हैं। सत्ताधारी और विपक्षी—दोनों के दिलों में गरीबों के लिए बराबर दर्द चलता रहता है। यह बात दीगर

है कि जीवन में सारी सुख-सुविधाओं को भोग रहे लोग भी गरीबों की हिमायत खूब कर लेते हैं।

हुआ यह कि पिछले पन्द्रह अगस्त को मैं अपने एक नव-कुबेर मित्र के घर नाश्ते के वक्त चला गया। नाश्ते में मजा आ गया—काजू-बादाम, अखरोट, किशमिश, दूध, परांठे और मक्खन। तो भाई जान! सुनहरी मौका हाथ आया और मैं जम गया नाश्ते पर और नाश्ते को लंच में तब्दील करके ही दम लिया। नाश्ते के पश्चात् मित्र को अपनी फैक्टरी में मजदूरों को सम्बोधित करने जाना था। उन्होंने बताया कि वे आज मजदूरों को लड्डू बाटेंगे, क्योंकि वे अपने गरीब मजदूरों का पूरा खयाल रखते हैं। सोचता हूं, काजू-बादाम का नाश्ता करने के बाद तो गरीबों का खयाल रखने के लिए मैं भी तैयार हूं और हो भी यही रहा है। सत्तापक्ष और विपक्ष दोनों इस मुद्दे पर सहमत हैं कि देश से गरीबी मिटनी चाहिए और दोनों पक्षों के लोग काजू-बादाम खाकर गरीबी मिटाते रहते हैं।

इसके प्रमाण भी मौजूद हैं—बाढ़ में जब परम्परानुसार गरीबों के घर बहते हैं या सूखे के कारण जब गरीबों को अकाल की भीषण ज्वाला में जलना पड़ता है तो सत्तापक्षी तथा विपक्षी अपने-अपने तरीकों से पीड़ितों के प्रति सहानुभूति दिखाते हैं। कारों के काफिले प्रभावित क्षेत्रों का दौरा करते हैं। नेताओं की दाता मुद्रा तथा गरीबों की याचक मुद्रा वाली तस्वीरें अखबार छापते हैं। कोई यह नहीं कहता कि इन दौरों पर जो (अप) व्यय होता है उसे लोगों में बांट दिया जाए तो शायद गरीबों का कुछ भला होगा।

जो लोग मानसिक रूप से अपने को सम्पन्न मानते हैं, वे भी गरीबी को मिटाने के लिए बेचैन रहते हैं। साहित्यकारों की बहसें सुन लीजिए—वे अपने लेखों और रचनाओं में गरीबी मिटा रहे हैं। अधिकतर लेखक तो मौका पड़ने पर अपने गर्दिश के दिनों की चर्चा करते समय अपनी गरीबी का बड़ा मार्मिक नक्शा पेश करते हैं गो उनसे ज्यादा गरीबी तो किसी ने देखी ही नहीं। एक वरिष्ठ कथाकार तो गरीबी मिटाने के लिए टी० वी० में घुस गये और रंगीन टी० वी० लाकर गरीबी मिटाने का ख्वाब देखते रहे। पर वे ही टी० वी० से चले गये। कैसी विडम्बना होगी

कि रंगीन टी० वी० आयेगा और गरीबी नहीं मिटेगी। फिर वे कह सकेंगे, 'देश के गरीब साथियो, तुम्हारी गरीबी कैसे हटती ? मुझे तो कम्बख्तों ने टी० वी० से निकाल दिया। मैंने तो तुम्हारे लिए ही सामान्तर कहानी का झंडा फहराया था। वहां से भी मुझे हटा दिया। अब तुम्हारी गरीबी कैसे मिटे ?'

एक ग्रामीण बैंक का उद्‌घाटन करते हुए नेताजी ने कहा—'इस बैंक के खुलने से इस क्षेत्र से गरीबी दूर होगी, क्योंकि लोग अपना धन बैंक में सुरक्षित रख सकेंगे। अब कौन समझाए उन्हें कि रुपया ही होता तो सुरक्षा की चिन्ता ही क्या थी ? पर वे ठहरे नेताजी ! उन्हें यदि अनाथालय का उद्‌घाटन करना होता तो वहां भी वे यही कहते।

मैं एक दवाई वाले की दुकान पर खड़ा था। एक औरत अपने बीमार बच्चे के लिए दवा खरीदने आई। उसने डाक्टर की पर्ची दवा वाले को दी। वह औरत की औकात जानता था इसलिए बोला, 'सारी दवा पच्चीस रुपये की होगी।' औरत घबरायी, फिर धीरे से बोली, 'आधी दवा दे दो,' कैमिस्ट ने उसे बारह रुपये की दवा दे दी। मैं सोचने लगा, जिस देश में बीमार बच्चे के लिए पर्याप्त दवा खरीदने की औकात मां-बाप की न हो, वहां काजू और बादाम न खाने की बात करना कितना बेमानी है !' पर कितने लोग इस स्थिति को महसूस करते हैं। गरीबी हटाने की चर्चा करना अभ्यासी बन चुका है। हां, गरीबी को कोई नहीं मिटाता, गरीब को सब मिटाते हैं।

मगर आज ही तो ऐसा नहीं हो रहा है। यह तो युग-युग की कहानी है। हर युग में समर्थों ने गरीबों को कुचला है, उनका शोषण किया है। पर पता नहीं ये कम्बख्त कौन-सी जीवनी शक्ति लेकर जन्मते हैं। हर युग में विद्यमान हैं, न गरीब मिटते हैं न गरीबी।

तो हुजूर, आप चाहें तो काजू खायें चाहे बादाम, पर गरीबी को मूंगफली भी मयस्सर नहीं होती। पर यह व्यर्थ के उपदेश भी क्यों देते हैं ?

## ठोस सुझाव से ठोस कविता तक

ठोस शब्द अंग्रेजी के 'सॉलिड' शब्द का पर्याय है इसमे सन्देह नही। किन्तु ठोस शब्द कहा से निकला, इसका उत्तर मैं नही दे सकता। एम० ए० करते समय भी भाषा-विज्ञान के पेपर मे व्युत्पत्ति वाला चेप्टर मैंने बिलकुल छोड दिया था। जब कि व्युत्पत्तिवाला प्रश्न बड़ा 'सॉलिड' होता है क्योंकि उस पर पूरे अंक मिलते है (गलत होने पर पूरे अक कटते भी हैं) लेकिन मेरा दुर्भाग्य ही समझिए यह सॉलिड वाला मामला मेरी समझ मे नही आ पाता। व्याकरण में निहायत कमजोर रहा। व्याकरण ही समझ सकता तो गणित ही न पढ़ लेता। गणित समझने लायक नही था इसलिए मुझको विज्ञान ही छोडना पडा, वर्ना आज मैं भी कोई ठोस कार्य कर रहा होता।

स्वतन्त्रता के पश्चात् भारतीय जन-जीवन के लिए 'ठोस' शब्द बहुत महत्वपूर्ण रहा है। सदियो की गुलामी के बाद भारत आजाद हुआ तो देश के शुभचिंतकों के विचार से देश के विकास के लिये कुछ ठोस कदम उठाने जरूरी थे क्योंकि गुलामी के दौरान देश के हित में कोई ठोस कार्य नही हुआ। सारी दुनियां प्रगतिकर रही थी, अपने लिये भी प्रगति जरूरी थी। आज के जमाने मे किसी देश का (कम-से-कम भारत का) विकास बिना 'ठोस' शब्द के सम्भव नही। इसलिए जब-जब विकास की बात चली, 'ठोस' शब्द स्वतः ही सामने आता गया।

बहरहाल, मामला ठोस सुझाव से शुरू हुआ। देश के छोटे-बड़े सभी खैर-ख्वाहों ने विकास के लिए 'ठोस सुझाव' देने प्रारम्भ कर दिये। एक तरह 'ठोस सुझावों' का जिहाद छिड गया। स्थानीय (जिसमे पारिवारिक

भी शामिल है) से अन्तर्राष्ट्रीय स्तर तक की समस्याओं को सुलझाने के लिए ठोस सुझाव दिए जाने लगे। समाचार-पत्र ठोससुझावों से भरने लगे। विचारो ठोस सुझावो से मुक्त मौलिक विचार पत्रों और पुस्तकों मे छपने लगे। ठोस सुझाव के सदर्भ मे प्रत्येक वाक्य का अत 'चाहिए' से होता था (आज भी होता है, आशा है कि भविष्य मे भी...पर यह जरूर है कि प्रत्येक ठोस सुझाव उसके देने वाले पर लागू नही होता।) कृषि विकास के लिए ठोस सुझाव, जनतत्र को मजबूत बनाने के लिये ठोस सुझाव, शिक्षा की प्रगति के लिये ठोस सुझाव, परिवार नियोजन के लिए ठोस सुझाव, कीमतो को रोकने के लिए ठोस सुझाव, लड़कियों की चुस्त पोशाक पर पाबन्दी के लिए ठोस सुझाव! गरज कि जीवन की कोई समस्या ऐसी नही बची जिससे सम्बन्ध मे ठोस सुझावो का तूफान नही आया। और तो और, ठोस सुझाव देने के लिए कमीशन तक बिठाए जाने लगे। यह जरूर हुआ कि फुटपाथ पर चाट वाले से लेकर सचिवालय के कर्मचारी तक प्रत्येक व्यक्ति ठोस सुझाव देने मे माहिर हो गया।

मैं तो अध्यापक हू (निहायत ही अठोस आदमी होता है यद्यपि उसका पेशा ही ठोस सुझाव देना होता है।) इसलिए ठोस सुझावो की बानगी अपने ही क्षेत्र से दे सकता हू। 'छात्रो मे अनुशासनहीनता कारण और निराकरण के उपाय' विषय पर एक उपनिषद् (सेमीनार) मे भाग लेने का सौभाग्य मुझे मिला। उपनिषद् की पहली विशेषता तो यह थी कि इसमे एक भी छात्र भाग नही ले रहा था। खैर साहब, समस्या के निराकरण के लिए ठोस सुझाव आते थे। काफी गर्म बहस के बाद (गर्म चाय के पहले) ये ठोस सुझाव हमारे सामने आये—हमारे छात्र एकलव्य को अपना आदर्श माने, वे अपने गुरुओ का आदर करें, वे अपनेअन्दर काम करने की आदत डालें, देश का भविष्यउन्ही के सबल कधों पर है इसलिए वे सुयोग्य नागरिक बनें... मैं समझता हू कि इन ठोस सुझावो के सामने छात्र अनुशासन हीनता ठहर ही नही सकती। देश को आजाद हुए 40 साल हो गये किन्तु ठोस सुझावो की आवश्यकता दिनों-दिन बढ रही है। क्योंकि हमारे यहा न समस्याओं की कमी है, न ठोस सुझाव देने वालो की।

ठोस सुझावो को कार्यान्वित करने के लिए ठोस कदम उठाने जरूरी

थे । पहले तो ठोस सुझावो का मूल्यांकन करने के लिए समितिया नियुक्त हुईं (यह एक कठोर कदम था ।) ठोस सुझावो के परिणाम देखने के लिए अनुसंधान-कार्य प्रारम्भ हुए (दूसरा ठोस कदम)। फिर इन ठोस सुझावो को योजनाओ में बदलने के लिए उद्घाटनों का मौसम आया (स्मरण रहे उद्घाटन भी एक ठोस कदम है) कमीशनों के प्रति-वेदन छपकर दुकानो मे बिकने लगे (ठोस कदम) विभिन्न क्रियाशीलनो के विज्ञापन पट्ट सडको पर लगे (परिवार-नियोजन के लिये नसबन्दी और लूप का विज्ञापन कार्य ठोस कदम है) । कृषि-विकास मे प्रयोग करने के लिए फार्म तथा प्रयोगशालाए खुलने लगी जिन पर 'अफसर' लोग काम करने लगे (ठोस कदम) तो ठोस कदम उठाने का कार्य भी बडी तेजी से चला यह बात दूसरी है कि कदम वही के वही रहे ।

फिर प्रारम्भ हुआ ठोस कार्य । बडी-बडी योजनाओ पर कार्य शुरू हुआ । इजीनियर और ठेकेदार मिलकर 'ठोस-कार्य' मे व्यस्त हो गये । हर अफसर सही मायने मे 'अफसर' की तरह काम करने लगा (जनता का जीवन-स्तर उठाना एक ठोस सुझाव था) । सरकारी नौकर आफिसों को छोड घरो मे काम करने लगे । सरकारी वाहन पिकनिक पर जाने लगे । अफसरी का चक्कर कुछ ऐसा चला कि 'ग्राम-सेवक' भी अफसर हो गया । सरकारी आयोजनो मे घाटा होने लगा । सरकारी फॉर्म पर काम कर रहे एक मित्र ने बताया कि सरकारी कृषि फार्म सदा घाटे मे चलते है । पशु-पालन विभाग के अधिकारी से मालूम हुआ कि डेरी-फार्म सदा घाटे मे चलते है । विकास कार्य की योजनाए तो है ही घाटे के लिए । मै किसी से क्या पूछू ? अपने यहा तो रेलें भी घाटे मे चलती है ।

इस सबका एक ही मतलब निकलता है कि जितने भी ठोस कार्य हैं वे सब घाटे मे चलते है, जिसमे लाभ हो जाए वह ठोस कार्य नही है इसलिए न तो टाटा ने कोई ठोस कार्य किया न बिरला ने । अतः परिवार-नियोजन के ठोस कार्यो के बावजूद आबादी बढ रही है । अन्न की पैदावार प्रतिवर्ष बढने के बावजूद अन्न की कमी का कोई ठिकाना नही । जब तक ठोस कार्य होगें तब तक यह सब तो होगा ही क्योंकि ठोस कार्य सदा देश-हित में होते हैं ।

इन्हें बाजार में मिल गयी। इन्होंने मुझे घूरकर देखा और बोले—"बहनजी, मैंने आपको पहले भी कहीं देखा है?"

बेचारे श्रोताओं ने फिर ठहाका लगाया और कवि सबरसी तथा संयोजक ने अपने-अपने कविता-पाठ से मंच पर तहलका मचा दिया। आल-राउण्डरों के इस तहलके में अच्छे से अच्छे कवि की हालत क्रिकेट की टीम के बारहवें खिलाड़ी की-सी हो जाती है। यह तो मात्र एक दृश्य है और एक ही कवि-सम्मेलन में ऐसे फूहड़ दृश्यों की भरमार रहती है। कहने की जरूरत नहीं कि आज...कवि-सम्मेलनों में कविताएं कम होती हैं और यह यह भौंडी चुटकुलेबाजी ज्यादा होती है। यह भौंडी चुहलबाजी उन कवियों की नियति भी हो चली है, जो कभी मंच पर गम्भीर कवि के रूप में जाने जाते थे। ऐसे ही एक प्रसिद्ध कवि से (जिनके पास अच्छे गले के साथ अच्छी कविताएं भी हैं) पूछा, "आप एक कविता सुनाने से पहले चार लतीफे क्यों सुनाते हैं?" वे मायूस होकर बोले, "भाई! क्या करें इन लोगों ने कवि-सम्मेलनों का वातावरण ही भ्रष्ट कर दिया है।" मैंने पूछा, "किन लोगों ने?" उनके पास कोई उत्तर नहीं था, मैंने ही कहा, "कोई भी भ्रष्ट करे, आप स्वयं अपने स्तर से नीचे क्यों गिरते हैं? आप वे कविताएं सुनाइये जो आपको रिप्रेजेण्ट करती हैं।"

वे मेरी बात से निराश हो गये थे। मैं उनकी विवशता जानता हूं—कवि-सम्मेलन उनका व्यवसाय है और वे वही करेंगे, जिसमें उन्हें व्यावसायिक दृष्टि से सफलता मिल सके, ऐसा नहीं कि हिन्दी में ऐसे कवि नहीं हैं जिन्होंने अपना मयार गिराये बिना व्यावसायिक सफलता अर्जित की है। पुरानी पीढ़ी के बच्चन, नेपाली, सुमन, रंग, दोषी आदि की बात जाने दीजिए, रामावतार त्यागी, बालस्वरूप राही, नीरज जैसे अनेक लोग हैं जिन्होंने मंच से समझौता करके कभी कविताएं नहीं लिखीं। (यह बात दूसरी है कि नीरस मंच की भड़ैती में त्रस्त होकर 'राही' ने तो कवि सम्मेलन से संन्यास ही ले लिया जबकि रामावतार त्यागी ने इस भड़ैती का उत्तर अपने एक उम्दा गीत में ही दिया है।)

सभी जानते हैं कि आज के कवि-सम्मेलनों में कविताएं नहीं होतीं, सस्ती भड़ैती होती है जो फूहड़ता की हद तक पहुंच जाती है तथा

सुरुचिसम्पन्न श्रोताओं के लिए कुपाच्य हो जाती है। किन्तु ये सारे 'भाड' कवि जब अपने आपको कबीर, भारतेन्दु, निराला, मुक्तिबोध के सघर्ष से जोडते है तो कई प्रश्न सामने आ जाते हैं—(1) कवि-सम्मेलन एक साहित्यिक विधा है या मनोरजन का साधन ? (2) सम्मेलनों मे कविता-पाठ साहित्य-सेवा (समाज-सेवा) है या व्यवसाय ? (3) कवि-सम्मेलनों में पढी जाने वाली कविताए क्या हिन्दी कविताधारा की प्रतिनिधि कविताएं हैं ?

आज के कवि-सम्मेलनो का जायजा लेने के बाद यह क्रूर निष्कर्ष निकलता है कि कवि-सम्मेलन साहित्यिक विधा नही रह गयी है।(अपवाद-स्वरुप यदि कोई साहित्यिक कवि-गोष्टी हो भी जाए तो उससे निष्कर्ष पर कोई प्रभाव (फर्क) नही पडता।) आज से 20-25 वर्ष पूर्व का कवि-सम्मेलन वाकई साहित्यिक होता था, पर हास्य का फूहड नाला आज के कवि-सम्मेलनो मे जो गन्दगी बखेरता है, वह चिन्तनीय है। प्रचलित लतीफों का फूहड रुपान्तर कविता (तुकबदी) बनकर इन कवि-सम्मेलनो में सुनायी देता है अतः उसे साहित्यिक कतई नही कहा जा सकता। यदि इसे मनोरंजन का लोकप्रिय साधन मान ले तो वहा फिर स्वस्थ मनोरजन का प्रश्न पैदा हो जाएगा। किसी जमाने मे कवि सैनिकों में राष्ट्रीय भावनाओ का स्फुरण करता था, सन्त कवियो ने अपनी वानियो से सामान्य जन को उद्बोधित किया था, रीति-काल मे कविता जरूर मनोरजन के साधन के रूप मे स्वीकृत हुई, पर तब भी कवि सौन्दर्य तथा चमत्कार द्वारा अपनी कविता को असरदार बनाने की चेष्टा करता था, स्वतंत्रता-आन्दोलन के दौरान हिन्दी कवियो ने जनता को उद्बोधित कर अपने गम्भीर उत्तरदायित्व का निर्वाह किया था, छायावादोत्तर गीतकार ने कवि-सम्मेलन की सस्कृति को पूरी तरह विकसित किया तथा सामान्य जन को साहित्यिक मनोरजन उपलब्ध कराया। यही से कवि-सम्मेलन ने एक सशक्त जन-माध्यम का आकार ग्रहण कर लिया तथा गीतकारों ने उसे लोकप्रिय बनाने मे अपना महत्त्वपूर्ण योगदान दिया। इन लोगों ने इस माध्यम का स्वरुप साहित्यिक ही बनाए रखा तथा इसके गम्भीर कवि-कर्म का पूरा लाभ श्रोताओं ने भी उठाया।

पर गत दशक में कवि-सम्मेलन की संस्कृति भ्रष्ट हो गयी है तथा इसका स्वरूप अब गैर-साहित्यिक हो गया है। आज जब कि फिल्म तथा नाटक जैसे जनमाध्यमों के प्रति सेंसर की नीति काफी कठोर हो गयी है तो इन भ्रष्ट कवि-सम्मेलनों पर कोई-न-कोई अंकुश लगाना अनिवार्य प्रतीत होता है। कविता के नाम पर चल रही इस भड़ैती पर वही नियम लागू होने आवश्यक हैं जो आम मनोरंजन के साधन पर लागू हैं। इससे हिन्दी कविता के नाम पर लगा सस्तेपन का कलंक शायद दूर हो सके। यहां इतना और निवेदन कर दूं कि कवि अपनी भंडैती का दोष अक्सर जन-रुचि को देते हैं जब कि यह भी सही है कि आज श्रोतागण अज्ञेय, रघुवीर सहाय, सर्वेश्वरदयाल सक्सेना, ऋतुराज जैसे कवियों को सुनने और सराहने की क्षमता रखते हैं। इसके अनेक प्रमाण दिये जा सकते हैं।

कवि-सम्मेलनों में जमने वाले ये कविगण अपने कर्म को साहित्य-सेवा ही मानते हैं। पारिश्रमिक के लिए वे किस तरह झगड़ते हैं, उनकी अपनी गुटबंदियां कितनी ओछी हैं, वे परस्पर कितनी टुच्ची छींटाकशी करते हैं, मंच पर वे कैसा अभद्र व्यवहार करते हैं, इस सबका उल्लेख यहां बेकार होगा। वैसे भी इन कवियों की 'ऊंची नीचाइयों' से व्यवस्थापक तथा श्रोता अच्छी तरह वाकिफ हो चुके हैं। पर उनके कवि-कर्म से हिन्दी कविता के विकास को कितनी गति मिली है—यह उन्हीं से पूछा जाना चाहिए।

यहां भी अन्ततः निष्कर्ष यही निकलता है कि कवि-सम्मेलनमें कविता पाठ न सामाजिक सेवा है और न समाज-सेवा, प्रत्युत शुद्ध व्यवसाय है। काफी कवि इसी व्यवसाय से जीवन-यापन कर रहे हैं। मुझे इस बात में कतई एतराज नहीं कि कवि इस कर्म को व्यवसाय क्यों बनाते हैं। और मेरी कामना है कि खूब फलें-फूलें पर बराये-मेहरबानी वे अपने आपको 'कलम का सिपाही' घोषित कर कबीर, भारतेन्दु, निराला, बच्चन, नेपाली की परम्परा में न जोड़ें। ईमानदारी का तकाजा तो यह है कि वे खुल्लमखुल्ला कहें कि वे व्यवसायी हैं और कंठ और शब्द का व्यापार करते हैं। मगर यहीं से इस मुद्दे का दूसरा पहलू शुरू हो जाता है। यदि यह एक व्यवसाय है तो इन व्यापारियों पर भी कोई-न-कोई नैतिकता या दण्ड-संहिता तो लागू होगी

कवि-सम्मेलन मनोरजन का एक आम तथा सस्ता साधन है तथा इनमे कविता-पाठ एक व्यवसाय है—यह मानने के बाद यह तय है कि साहित्य के नाम पर फूहड़ता प्रस्तुत करने वाले कवियो पर वही दड-सहिता लागू होगी जो धनिये मे मिलावट करने वाले व्यापारी पर लागू होती है क्योकि वे भी साहित्य में मिलावट कर जनता का मानस विकृत करने की स्वतन्त्रता नही भोग सकते।

कवि-सम्मेलनी कवि स्वय को हिन्दी का अनन्य सेवी ही मानते है, इसमे दिक्कत की कोई बात नही है। पर देखना यह है कि क्या उनकी कविताएं आज की हिन्दी कविता के तेवर की सही पहचान प्रस्तुत करती हैं ? इन मचीय कवियो की दरिद्रता का पहला प्रमाण तो यही है कि मै ऐसे अनेक कवियों को जानता हू जिनमे से हरेक पिछले दस-बारह वर्षों से अपनी पाच-छह कविताओं के बल पर ही सम्मेलनो मे जमा हुआ हे। केवल कुछ कविताओ के बल पर पैसा कमाते रहना, हुनर के अलावा और कुछ भी नहीं है। यह स्थिति अत्यत भयानक है कि सवेदना का स्रोत इतनी जल्दी सूख जाए। जिस पर बडबोलापन इतना कि ऐसा गीतकार कहता है, 'यह प्रयोग विश्व-साहित्य मे मैंने पहली बार किया है।' जो फूहड हास्य प्रस्तुत करते है, उनके पास चालू चुटकुलों की तुकबदी के अलावा कुछ भी नही है, उनकी बात तो जाने दीजिए, जो गीतकार है (मधुर गले ने जिन्हे गीतकार बनाया है)। उनकी सवेदना भी अन्यन्त पिछडी हुई है। एक अच्छे गीतकार है—अपने को 'गाव का गीतकार' कहते हैं,। गाव के परिवेश को गीतों मे उभारते है पर उनके गीतो मे अब भी 'अमराइयो मे रेशम की डोरी पर गोरी झूलती है।' मैंने कहा, 'बंधु, मैं भी देहात का हू पर मुझे तो दिखायी नही देती।' वे चुप लगा जाते। कभी कोई गोरी रेशम की डोर पर झूलती है, मैं फिर कहता हू, 'भाई आज की ग्रामीण स्थितियो पर कोई चीज लिखो।' मेरा कहना बेकार है। पर जानता हू कि उनके गीत आज के ग्रामीण आदमी के सघर्ष तथा गाव की स्थितियो के सदर्भ मे एकदम बेमानी है। यदि कोई गीतकार महानगर की ओर बढेगा तो वह अपने गीतों में कोलाहल और मशीनों से घबराने की बात कहेगा, बस !

आधुनिक जीवन की विसगतियो को व्यक्त करने की गीत मे कितनी

क्षमताएं हैं, इसका प्रमाण हरीश भादानी, बालस्वरूप राही, तारादत्त निर्विरोध आदि के गीतों में मिल चुका है। दुष्यंत कुमार ने तो वह काम गजलों में कर दिखाया, जिसे नयी कविताओं में करने की चेष्टाएं होती रही हैं।(वैसे आजकल ज्यादातर गीतकार दुष्यंत के अनुकरण पर धुआंधार बेहूदा गजलें लिखने में लगे हैं, मगर उनकी संवेदनाओं में कोई नयापन नहीं है। सूर्यभानु गुप्त और राजेश रेड्डी जैसे कवि तो विरले हैं जिनके पास गजल की सही पकड़ है।) बालस्वरूप राही ने कवि-सम्मेलनों में जाना छोड़ दिया क्योंकि वे भड़ैती पर उतरने को तैयार नहीं थे। तारादत्त निर्विरोध के पास ऐसे गीत हैं जिनमें उसने आधुनिक जीवन की विसंगतियों को पूरी तुर्शी के साथ उभारा है। उसके गीतों में भाषा की ताजगी और मुहावरों का नयापन है पर मंच का हीरो वह नहीं बन सकता।

मेरी बातें काफी अटपटी लग सकती हैं—पर कवि सम्मेलन की संस्कृति पर हमें नये दृष्टिकोण से विचार करना चाहिए तथा इस सशक्त, जन-माध्यम को फूहड़पन के पंक से निकालकर इसके प्रभावशाली प्रयोग की सम्भावनाओं पर सोचना चाहिए। इससे शायद जनता, मंच तथा हिन्दी कविता—तीनों का भला हो सके।

०००